महादेवी वर्मा

राय आनन्द कृष्णजी, काशी के सौजन्यसे प्राप्त फोटोके आधारपर श्री चित्त प्रसाद द्वारा अंकित ।

गद्यकार महादेवी और नारी समस्या

अमृतराय

कविके रूपमें ही महादेवी अधिक प्रख्यात हैं, लेकिन उनके गद्य साहित्यसे थोड़ा सा भी परिचय प्राप्त करनेपर इस बातका पता अच्छी तरह चल जाता है, कि उनका गद्यकारका रूप उनके कवि-रूपसे तनिक भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्रतिपादित विचारों और शैली दोनों ही की दृष्टिसे वह हमारे आधुनिक साहित्यका एक बहुत पुष्ट अंग है और आजकी हमारी प्रगतिशील सामाजिक चेतनासे भली भाँति अनुप्राणित होने ही के कारण हमारे नवीन साहित्यको स्फूर्ति भी देता है।

महादेवीका गद्य साहित्य तीन प्रकार का है। पहला उनका विवेचनात्मक गद्य जो उनकी कविता-पुस्तकोंकी भूमिका और कुछ स्फुट निबन्धोंके रूपमें है; दूसरा, उनके संस्मरण; तीसरा, 'चाँद' की उनकी नारी समस्या विषयक संपादकीय टिप्पणियाँ, जिन्हें पुस्तकाकार एकत्र करके "श्रृंखलाकी कड़ियाँ" नाम दिया गया है। महादेवीका काव्य पढ़ चुकनेपर जब पाठक उनके इस गद्य साहित्यको पढ़ता है तब जो बात अपनी सम्पूर्ण तीव्रतामें सबसे पहले उसकी चेतनाको स्पर्श करती है, वह है दोनोंकी परस्पर विरोधी प्रवृत्ति। यहाँपर यह भी स्मरणीय है कि यह विरोध केवल विरोधाभास नहीं, समग्र विरोध है। कवि महादेवीकी दृष्टि, उनका लक्ष्य, पाठकके मनपर उनका प्रभाव, उनके साहित्यिक उपादान--सब गद्यकार महादेवीसे सर्वथा भिन्न हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसा जान पड़ने लगता है कि कवि महादेवी और गद्यकार महादेवी दो व्यक्ति हैं, एक नहीं। इस बातपर तनिक और गम्भीरतासे विचार करनेकी आवश्यकता है। महादेवीका काव्य मूलतः आत्मकेन्द्रिक है। उसकी आत्माको भिन्न-भिन्न आलोचकोंने भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। किसीने उसे रहस्यवाद कहा है, किसीने दुःखवाद और किसीने रुदनवाद। महादेवीने स्वयं अपनी कविताका सबसे अच्छा परिचय दिया है:

मैं नीरभरी दुखकी बदली

उनकी इसी एक पंक्तिको मनमें रखे हुए आप उनके सम्पूर्ण काव्य साहित्य का अवलोकन कर डालिये और तब आप तुरन्त जान लेंगे कि यही भाव शिराओंमें

बहनेवाले रक्तके समान उसमें सर्वत्र प्रवाहित हो रहा है। अब इसे आप चाहे जिस नामसे पुकार लीजिये, उसकी मूल प्रेरणामें कोई अन्तर नहीं आयेगा और उसको जानने समझनेके लिये आवश्यक है कि हम कविकी सृष्टिको कठोर धरतीपर उतारकर उसका निरीक्षण करें। वैसा करनेपर सहज ही यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवीके रुदन, दुःख अथवा 'रहस्यवाद'का उद्गम सामाजिक स्थितिमें ही है। उनकी कविता समाजकी दुरवस्था, असहाय नारीकी विपन्न स्थिति, व्यक्ति और समाजके परस्पर 'वैषम्य', रुद्ध भावनाओं, दमित इच्छाओं और प्रचलित सामाजिक कुसंस्कारोंके कारण पूर्ण रूपसे प्रस्फुटित न हो पानेवाले अभिशप्त जीवनका भावात्मक, आत्मकेन्द्रिक निरूपण है; उनकी निरुद्ध, पराजित प्रतिक्रिया स्वरूप कविका एकान्त रुदन है। रुदन ही में कविको संतोष या आनन्द मिलने लग जाय, पीड़ाकी ही वह पूजा करने लग जाय, तब भी कविकी इस असाधारण मनःस्थितिका साक्ष्य देकर यह नहीं कहा जा सकता कि सामाजिक स्थितिसे असंतोष ही उसका कारण नहीं है यह बात तो एक कठोर सत्यके रूपमें अपने स्थानपर अचल है, नामों अथवा वादों के हेर-फेरसे उसका कुछ नहीं बनता बिगड़ता। इसलिये महादेवीके काव्यको मूलतः आत्मकेन्द्रिक, आत्मलीन कहना ठीक है, अपनी ही पीड़ाके वृत्तमें उसकी परिसमाप्ति है। संसारकी पीड़ाका स्वतः उसके लिये अधिक मूल्य नहीं है, मूल्य यदि है तो कविकी पीड़ाके रंगको गहराई देने वाले उपादानके रूपमें।

इसके ठीक विपरीत महादेवीका गद्य साहित्य मूलतः समाजकेन्द्रिक है। उसने जनताके पीड़ित जीवनको स्वर दिया है। उसने समाजके दुख, दैन्य, उसके स्वार्थों और अभिशापोंका प्रतिकार किया है। उसमें एक विद्रोहीकी आत्मा रुदन कर रही है। उसका मूल उत्स अपनी पीड़ामें नहीं, समाजमें दिनरात चलनेवाले अन्यायों और अत्याचारोंमें है। अब इसका कोई उचित कारण समझमें नहीं आता कि महादेवीके इन दोनों रूपोंमें ऐसा अमाप पार्थक्य, ऐसा विचित्र वैषम्य क्यों है। उनके काव्य साहित्यके अवगाहनेसे तो कोई भी पाठक इसी निष्कर्षपर पहुँचेगा कि भौतिक जगतके कठोर सन्ताप उनके समीप अस्तित्वहीन हैं और वे अपने पीड़ा-लोकमें ही अपना विकास देखती हैं। ध्यान देनेकी बात है कि इस पीड़ा-लोकमें मूल आध्यात्मिक पीड़ाको ही आँका जाता है, उसी पीड़ाका जिसका भली भाँति उदात्तीकरण (sublimation) या तनिक और आगे बढ़कर कहें तो अतीन्द्रियकरण हो चुका है; जरा-मृत्यु, शोक-सन्तापका कारण जो सम्पूर्ण रूपसे कठोर भौतिक पीड़ा है, जिसके कारण विशाल जन-समुदायका जीवन जीने योग्य नहीं है, वह तो जैसे खोटा सिक्का है। परन्तु यह विचित्र बात है कि इसी 'खोटे सिक्के'से उनके तपःपूत जीवनका व्यापार चलता है। जिन्होंने पाससे उनके जीवनको देखा है वे इस बातका साक्ष्य देंगे। जिन्हें इस बातका सुअवसर नहीं मिला है, वे ही उनके

गद्य साहित्यके अध्ययनसे इस बातका प्रमाण पा सकेंगे कि महादेवीका कर्मनिष्ठ, सहज संवेदनशील, अन्यायका तत्पर विरोधी, सामाजिक तथा अन्य सभी कुसंस्कारों का उच्छेदक, समग्र संघर्षशील यही जीवन उनके गद्यमें प्राणोंका ओज बनकर बोल रहा है। इसलिये यह कहना बड़ी भूल होगी कि महादेवीके समीप जीवनकी कठोर मूल वास्तविकताएँ मूल्यहीन हैं, क्योंकि उनका सारा गद्य साहित्य इसी बातके विरोधमें साक्ष्य देता है। लेकिन जीवनका जो पारदर्शी सत्य उनके गद्य साहित्यका प्राण बनने की सामर्थ्य रखता है, वही उनके काव्यलोकमें पहुँचकर क्यों सहसा नितान्त पंगु एवं अक्षम बन जाता है और उसी ओजःस्फूर्त्त रूपमें उनकी भावचेतनाको भी क्यों नहीं प्रभावित करता, यह एक ऐसी समस्या है जिसका उत्तर इस समय देना सम्भव नहीं है। प्रस्तुत निबन्धका विषय भी वह नहीं है। इस समय तो हमें उनके नारी जीवन विषयक विचारोंकी ही समीक्षा करनी है।

भारतीय नारी आज कैसी उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, अधिकारहीन, व्यक्तित्व-हीन प्राणी है, इसका प्रमाण खोजने जानेकी जरूरत नहीं। जिस किसीने भी अपनी दोनों आँखें फोड़ नहीं डाली हैं, उसके लिये यह एक स्वयंसिद्ध बात है। हमें चारों ओर नारीकी दासताके प्रमाण मिलते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि भारतीय नारीसे अधिक दयनीय प्राणी संसारमें कठिनाईसे मिलेगा। उसे न पुत्रीके रूपमें अधिकार है, न माताके रूपमें, न पत्नीके रूपमें, न बहनके रूपमें। विधवाकी तो जो स्थिति हमारे समाजमें है, वह बिलकुल अकथ्य है। अनेक समाज-सुधारकोंने हिन्दू विधवाको समाजकी बलिवेदीपर चढ़नेवाले बलिपशुकी संज्ञा दी है लेकिन चिन्तन और भावनायुक्त इस बलिपशुके लिये यह संज्ञा हलकी नहीं पड़ेगी, यह कहना कठिन है। आज हिन्दू समाज नारीकी अभिशप्त परवशताकी भूमिकामें दम तोड़ रहा है। जड़ रूढ़ियों और बद्धमूल संस्कारोंकी धूँआती हुई अग्निमें जलते हुए नारी जीवनकी चिराँधसे साँस लेना कठिन है। शायद हम सभी लोगोंके घरोंकी दीवारोंपर नारीके किसी न किसी रूपकी निर्मम हत्यासे उछले हुए खून के छींटे मिलेंगे। समाजके इस व्रणको न जाननेका नाट्य अब कोई नहीं कर सकता। आज हिन्दू समाज में (विशेषकर मध्यवर्गीय समाजमें) नारीकी क्या दशा है, इसका विक्षुब्ध परिचय स्वयं महादेवीके शब्दों में सुनिये :

> 'इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजनके लिये रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोगके लिये गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार यह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियोंके समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाजके पुरुषके विवेकहीन जीवनका सजीव चित्र देखना हो तो विवाहके समय गुलाब सी खिली हुई स्वस्थ बालिकाको पाँच वर्ष बाद देखिये। उस समय उस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल सन्तानों की रोगिणी पीली मातामें कौन सी विवशता कौन सी रुला देनेवाली करुणा न मिले !'
>
> —शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ १०२

और भी तीखा परिचय लीजिये :

'क़ानून हमारे स्वत्वोंकी रक्षाका कारण न बनकर चीनियोंके काठके जूतेकी तरह हमारे ही जीवनके आवश्यक तथा जन्मसिद्ध अधिकारोंको संकुचित बनाता जा रहा है। सम्पत्तिके स्वामित्वसे वंचित असंख्य स्त्रियोंके सुनहले भविष्यमय जीवन कीटाणुओंसे भी तुच्छ माने जाते देख कौन सहृदय रो न देगा? चरम दुरवस्थाके सजीव निदर्शन हमारे यहाँके सम्पन्न पुरुषोंकी विधवाओं और पैतृक धनके रहते हुए भी दरिद्र पुत्रियोंके जीवन हैं। स्त्री पुरुषके वैभवकी प्रदर्शिनी मात्र समझी जाती है और बालकके न रहनेपर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानोंसे उठाकर फेंक दिये जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुषके न होने पर न स्त्रीके जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृहमें उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है। जब जला सकते थे तब इच्छा या अनिच्छासे उसे जीवित ही भस्म करके स्वर्गमें पतिके विनोदार्थ भेज देते थे, परन्तु अब उसे मृत पतिका ऐसा निर्जीव स्मारक बनकर जीना पड़ता है जिसके सम्मुख श्रद्धासे नत मस्तक होना तो दूर रहा, कोई उसे मलिन करनेकी इच्छा भी रोकना नहीं चाहता।'

—पृ. १६--१७

हिन्दू नारीकी घर और बाहर दोनों जगह एक ही सी स्थिति है :

'हिन्दू नारीका घर और समाज इन्हीं दो से विशेष सम्पर्क रहता है। परन्तु इन दोनों ही स्थानोंमें उसकी स्थिति कितनी करुण है इसके विचार मात्र से ही किसी भी सहृदयका हृदय काँपे बिना नहीं रहता। अपने पितृगृहमें उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसा किसी दूकानमें उस वस्तुको प्राप्त होता है जिसके रखने और बेचने दोनों ही में दूकानदारको हानिकी सम्भावना रहती है। जिस घरमें उसके जीवनको ढलकर बनना पड़ता है, उसके चरित्रको एक विशेष रूपरेखा धारण करनी पड़ती है, जिसपर वह अपने शैशवका सारा स्नेह ढुलकाकर भी तृप्त नहीं होती, उसी घरमें वह भिक्षुकके अतिरिक्त कुछ नहीं है। दुःखके समय अपने आहत हृदय और शिथिल शरीरको लेकर वह उसमें विश्राम नहीं पाती, भूलके समय वह अपना लज्जित मुख उसके स्नेहाँचलमें नहीं छिपा सकती और आपत्तिके समय एक मुट्ठी अन्नकी भी उस घरसे आशा नहीं रख सकती। ऐसी है उसकी वह अभागी जन्मभूमि जो जीवित रहनेके अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती! पति-गृह जहाँ इस उपेक्षित प्राणीको जीवनका शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकारमें उससे कुछ अधिक परन्तु सहानुभूतिमें उससे बहुत कम है, इसमें सन्देह नहीं। यहाँ उसकी स्थिति पल भर भी आशंकासे रहित नहीं। यदि वह विद्वान पतिकी इच्छा-नुकूल विदुषी नहीं है, तो उसका स्थान दूसरीको दिया जा सकता है। यदि वह सौन्दर्योपासक पतिकी कल्पनाके अनुरूप अप्सरी नहीं है, तो उसे अपना स्थान

रिक्त कर देनेका आदेश दिया जा सकता है। यदि वह पतिकी कामनाका विचार करके सन्तान या पुत्रोंकी सेना नहीं दे सकती, यदि वह रुग्ण है या दोषोंका नितान्त अभाव होनेपर वह पतिकी अप्रसन्नताकी दोषी है, तो भी उसे घरमें दासत्व मात्र स्वीकार करना पड़ेगा।'

—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ ३९-४०

पुरुष-शासित समाजमें नारीकी दासताका इससे अधिक प्रखर परिचय दूसरा नहीं हो सकता :

'साधारण रूपसे वैभवके साधन ही नहीं, मुट्ठी भर अन्न भी स्त्रीके सम्पूर्ण जीवनसे भारी ठहरता है।'

—अतीत के चलचित्र, पृष्ठ ५३

महादेवी इन निष्कर्षों पर किताबी ज्ञानके सहारे नहीं, जीवनके निकट परिचय द्वारा पहुँची हैं। यही कारण है कि उनके संस्मरणोंमेंसे अधिकांश नारीकी परवशता का चित्र उपस्थित करते हैं। विधवा जीवनके जो चित्र उन्होंने दिये हैं, उनमें खास तल्खी है। इस प्रश्नपर उनका ध्यान बार बार जानेका कारण भी शायद यही है कि यहींपर नारीकी परवशताका घोरतम रूप दिखायी पड़ता है।

वेश्याओंकी समस्यापर भी उन्होंने अपने सहज संवेदनशील ढँगसे विचार किया है और उन्हीं निष्कर्षोंपर पहुँची हैं, जिनपर कोई समाजशास्त्री पहुँचता। वेश्याओंको हेय समझनेवालोंका समुदाय विस्तृत है लेकिन उनको उस हेय स्थिति तक पहुँचानेमें और उन्हें वहीं रखनेमें स्वयं उनका हाथ भी है, इसे समझनेवाले बिरले ही मिलेंगे। उनपर विचार करते हुए अधिकांश लोग अपने कल्पित पावित्र्याभिमानकी गरिमासे फूलकर नाक-भौं सिकोड़ते देखे जायँगे, लेकिन उनकी पवित्रता, उनकी नैतिकताको वेश्याओंकी नैतिकतासे ऊँचा कहनेके लिये ठिठककर थोड़ा विचार अवश्य करना पड़ेगा।

महादेवी कितने सहानुभूतिपूर्ण ढंगसे वेश्या—जीवनपर विचार करती हैं, इसे देखिये :

'यदि स्त्रीकी ओरसे देखा जाय तो निश्चय ही देखनेवाला काँप उठेगा। उसके हृदयमें प्यास है, परन्तु उसे भाग्यने मृग—मरीचिकामें निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन भर आदिसे अन्त तक सौन्दर्यकी हाट लगानी पड़ी, अपने हृदयकी समस्त कोमल भावनाओंको कुचलकर आत्मसमर्पणकी सारी इच्छा-ओंका गला घोंटकर रूपका क्रय-विक्रय करना पड़ा—और परिणाममें उसके हाथ आया निराश-हताश एकाकी अन्त। × × × × जीवनकी एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारीसे मुग्ध करता रहता है, झूठी प्रशंसाकी मदिरासे उन्मत्त करता रहता है, उसके सौन्दर्य-दीपपर शलभ-सा मँडराता रहता है, परन्तु, उस मादकताके अन्तमें, उस बाढ़के उतर जानेपर, उसकी ओर कोई

सहानुभूति-भरे नेत्र भी नहीं उठाता। उस समय उसका तिरस्कृत स्त्रीत्व, लोलुपोंके द्वारा प्रशंसित रूप-वैभवका भग्नावशेष, क्या उसके हृदयको किसी प्रकारकी सान्त्वना भी दे सकता है? जिन परिस्थितियोंने गृहजीवनसे उनका बहिष्कार किया, जिन व्यक्तियोंने उसके काले भविष्यको सुनहले स्वप्नोंसे ढाँका, जिन पुरुषोंने उसके नूपुरोंकी रुन-झुनके साथ अपने हृदयके स्वर मिलाये और जिस समाजने उसे इस प्रकार हाट लगानेके लिये विवश तथा उत्साहित किया, वे क्या कभी उसके एकाकी अन्तका भार कम करने लौट सके?'

—श्रृंखला की कड़ियां, पृ. १११-११२

इसी समस्या पर पुनः लिखते हुए महादेवीके इस पवित्र क्षोभको देखिये :—

'इन स्त्रियोंने, जिन्हें गर्वित समाज पतितके नामसे सम्बोधित करता आ रहा है, पुरुषकी वासनाकी वेदीपर कैसा घोरतम बलिदान दिया है, इसपर कभी किसीने विचार भी नहीं किया। पुरुषकी बर्बरता, रक्त-लोलुपतापर बलि होनेवाले युद्ध—वीरोंके चाहे स्मारक बनाये जावें, पुरुषकी अधिकार भावनाको अक्षुण्ण रखनेके लिये प्रज्वलित चितापर क्षण भरमें जल मिटनेवाली नारियोंके नाम चाहे इतिहासके पृष्ठोंमें सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुषकी कभी न बुझनेवाली वासनाग्निमें हँसते-हँसते अपने जीवनको तिल-तिल जलानेवाली इन रमणियोंको मनुष्य जातिने कभी दो बूँद आँसू पानेका अधिकारी भी नहीं समझा। ×××× कभी कोई ऐसा इतिहासकार न हुआ, जो इन मूक प्राणियोंकी दुखभरी जीवनगाथा लिखता; जो इनके अँधेरे हृदयमें इच्छाओंके उत्पन्न और नष्ट होनेकी करुण-कहानी सुनाता, जो इनके रोम-रोमको जकड़ लेनेवाली शृंखलाकी कड़ियाँ ढालनेवालोंके नाम गिनाता और जो इनके मधुर जीवनपात्रमें तिक्त विष मिलानेवालेका पता देता।'

—श्रृंखला की कड़ियां, पृ. ११३-११४

वेश्याओंके प्रति जो दृष्टिकोण उपर्युक्त उद्धरणोंमें रूपायित हुआ है, वह केवल सहानुभूतिपूर्ण ही नहीं, प्रगतिशील भी है, क्योंकि वह यथार्थपर आधारित है, जीवनसम्मत है। इस समस्यापर विचार करनेवाले सभी समाजशास्त्रियोंने इस बातको स्वीकार किया है कि वेश्यावृत्ति स्वीकार करनेका कारण उन स्त्रियोंकी व्यक्तिगत दुर्बलता नहीं, सामाजिक परिस्थिति-जन्य विवशता ही है। जहाँ नारी सबसे अधिक पराधीन है, वहीं वेश्यावृत्ति भी सबसे अधिक है। जहा सम्पूर्ण समाजके साथ-साथ नारी भी स्वाधीन है, वहाँ वेश्यावृत्ति नहीं है। ऐसा सम्पूर्ण स्वाधीन समाज तो सोवियत रूसमें ही है, इसीलिये वहाँ वेश्यावृत्तिका नाम भी नहीं है और वे स्त्रियाँ जो कभी वेश्यावृत्तिसे जीविका उपार्जित करती थीं, आज सम्पूर्ण नागरिक अधिकारोंके साथ अपने समाजकी क्रियाशील सदस्याएं हैं और देशको अपनी अन्य पुत्रियोंके समान ही उन

पर भी गर्व है। इस प्रश्नपर आगे हम और विस्तारसे विचार करेंगे। यहाँ तो केवल यह दिखलाना उद्दिष्ट है, कि वेश्याओंकी समस्यापर न्यायपूर्ण ढंगसे विचार ही नहीं किया जा सकता, जब तक आप उन्हें सामाजिक परिस्थितियोंकी भूमिकामें रखकर न देखें। ऐसा करनेपर आप उसी बर्बर असभ्य ' निष्कर्ष ' पर पहुँचेंगे जिसपर विशाल अशिक्षित जन-समुदाय पहुँचता है, कि वे विशेष कामुकी होती हैं और उनका कोई इलाज सम्भव नहीं। सदा ऐसी स्त्रियाँ होती रहेंगी, जिनकी सम्भोगेच्छा इतनी प्रबल होगी कि वे एक पतिके प्रति अनुरक्त होकर रह ही नही सकेंगी, आदि। एक बार फिर यह कहना आवश्यक है कि इस प्रश्नपर यह दृष्टि घोर बर्बरताकी द्योतक है। सभ्य, शिक्षित दृष्टिकोण यह है :

> 'मनुष्य जातिके सामान्य गुण सभी मनुष्योंमें कम या अधिक मात्रामें विद्यमान रहेंगे। केवल विकासके अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ उन्हें बढ़ा-घटा सकेंगी। पतित कही जानेवाली स्त्रियाँ भी मनुष्य जातिसे बाहर नहीं हैं, अतः उनके लिए भी मानव सुलभ प्रेम, साधना और त्याग अपरिचित नहीं हो सकते। उनके पास भी धड़कता हुआ हृदय है, जो स्नेहका आदान-प्रदान चाहता रहता है, उनके पास भी बुद्धि है जिसका समाजके कल्याणके लिए उपयोग हो सकता है और उनके पास भी आत्मा है जो व्यक्तित्वमें अपने विकास और पूर्णत्वकी अपेक्षा रखती है। ऐसे सजीव व्यक्तिको एक ऐसे गर्हित व्यवसायके लिए बाध्य करना जिसमें उसे जीवनके आदिसे अन्त तक उमड़ते-हुए आँसुओंको अंजनसे छिपाकर, सूखे हुए अधरोंको मुस्कराहटसे सजाकर और प्राणोंके क्रन्दनको कण्ठ ही में रूँधकर धातुके कुछ टुकड़ोंके लिए अपने आपको बेचना होता है, हत्याके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'
>
> —पृ. ११५

रूप का व्यवसाय गर्हित है, व्यवसायी नहीं; क्योंकि किन्हीं परिस्थितियोंसे विवश होकर ही उसे यह व्यवसाय करना पड़ा होगा, इसलिये दोष परिस्थितियोंका है, परिस्थितियोंके निर्माण करनेवालोंका है। जो परिस्थितियोंके वैभवमें पड़कर बह गया, वह तो हमारी दयाका पात्र ही हो सकता है। उसके प्रति तो हम केवल रचनात्मक दृष्टिकोण रख सकते हैं, जिसमें हम पुनः उन परिस्थितियोंका निर्माण कर सकें जिनमें पहलेका रूप-व्यवसायी फिरसे हमारे समाजका आदृत सदस्य बन सके। स्वतन्त्र देश और स्वतन्त्रचेता विचारक यही दृष्टिकोण रखते भी हैं। अभी कुछ दिन हुए समाचार आया था कि फ्रांसने, नये स्वाधीन जागरित फ्रांसने, वेश्या-वृत्तिको अवैध घोषित कर दिया है और वेश्याओंको अन्य कार्योंमें लगानेकी व्यवस्था की है। यही सभी स्वाधीन देशोंमें होगा। नये रूसका उदाहरण भी इस दिशामें बहुत उपयोगी है। अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनता के युद्धमें ज़ारशाही रूसकी वेश्याओं और आजकी सोवियत महिलाओंका स्थान अन्य स्त्रियोंसे अणुमात्र भी कम नहीं रहा। उन्होंने छापेमारोंके दस्तोंमें भी काम किया।

जो काम उनकी अन्य बहनोंने किया, वही उन्होंने भी उतनी ही लगनके साथ किया। इसीलिये कि संसारके सभ्यतम देश समाजवादी रूसने उन्हें मनुष्य बननेका अवसर दिया था, उन्हें उस आत्माका हनन करनेवाले व्यापारसे छुटकारा दिया था, उनसे घृणा न करके उन्हें हृदयसे लगा लिया था। उनके प्रति महादेवीके दृष्टिकोणमें भी यही संवेदनशीलता यही करुणा परिलक्षित होती है और इसी करुणामें नव-निर्माणकी शक्ति है। यह करुणा वायवी नहीं, जीवनके गतिशील दर्शनपर आधारित है, इसीलिये जहाँ उसमें बलिपशुके लिये अजस्त्र करुणा है, वहीं बलि करनेवालेके लिये हिंस्र घृणा।

विधवाओं और वेश्याओंकी समस्यापर विचार करनेके साथ-साथ महादेवी ने कुछ अन्य सामान्य प्रश्नोंपर भी विचार किया है, जैसे सामाजिक रूढ़ियाँ। प्राचीनता और नवीनताका संघर्ष बहुत पुराना है और वह आज भी सुलझनेका नाम नहीं लेता। उसके सम्बन्धमें विचार करते हुए वे लिखती हैं :

'प्राचीनताकी पूजा बुरी नहीं, उसकी दृढ़ नींव पर नवीनताकी भित्ति खड़ी करना भी श्रेयस्कर है, परन्तु उसकी दुहाई देकर जीवनको संकीर्णसे संकीर्णतम बनाते जाना और विश्वासके मार्गको चारों ओरसे रुद्ध कर लेना किसी जीवित व्यक्तिपर समाधि बना देनेसे भी अधिक क्रूर और विचारहीन कार्य है।'

'जीवनकी सफलता अतीतसे शिक्षा लेकर अपने आपको नवीन वातावरणके उपयुक्त बना लेने, नवीन समास्योंको सुलझा लेनेमें है, केवल उनके अन्धानु-सरणमें नहीं। अतः अब स्त्रियोंसे सम्बद्ध अनेक प्राचीन वैधानिक व्यवस्थाओंमें संशोधन तथा अर्वाचीनोंका निर्माण आवश्यक है।

'समस्त सामाजिक नियम मनुष्यकी नैतिक उन्नति तथा उसके सर्वतोमुखी विकासके लिए आविष्कृत किये गए हैं। जब वे ही मनुष्यके विकासमें बाधा डालने लगते हैं तब उनकी उपयोगिता ही नहीं रह जाती। उदाहरणार्थ, विवाहकी संस्था पवित्र है, उसका उद्देश्य भी उच्चतम है, परन्तु जब वह व्यक्तियोंके नैतिक पतनका कारण बन जावे, तब अवश्य ही उसमें किसी अनिवार्य संशोधनकी आवश्यकता समझनी चाहिए।'

उपर्युक्त सभी उद्धरणोंसे एक अत्यन्त सुलझे हुए और रूढ़ियोंसे मुक्त, प्रगति-शील विचारकका परिचय मिलता है। महादेवीके विचारोंमें कहीं प्राचीनताके लिये आग्रह नहीं है और सर्वत्र नवीनतम मान्यताओंके स्वीकरणका भाव है। उनके विचारोंमें किसी सामाजिक कुसंस्कार या जड़ताकी छाया भी नहीं मिलेगी। यहाँ तक कि 'जारज' या अवैध सन्तानोंकी समस्यापर भी उनके दृष्टिकोणमें वही उदारता है, वस्तुस्थितिको निर्भीक भावसे ग्रहण करनेकी सच्चाई है, जो विधवाओं तथा वेश्याओं की ओरसे संघर्ष करते हुए उनमें पायी जाती है। अवैध सन्ततिकी समस्या बड़ी समस्या है। उसे उदार भावसे समस्त नागरिक अधिकारोंके साथ ग्रहण कर लेनेके लिये आन्दोलन करनेवाले कम ही समाज सुधारक मिलेंगे। क्रान्तिकारी दृष्टिकोणके

बिना यह सम्भव नहीं। महादेवीमें यही क्रान्तिकारी दृष्टिकोण मिलता है। पुराण-पंथियोंकी भर्त्सना करते हुए वे लिखती हैं :

'जिन मानवीय दुर्बलताओंको वे स्वयं अविरत संयम और अटूट साधनासे भी जीवनके अन्तिम क्षणों तक न जीत सकेंगे उन्हीं दुर्बलताओंको किसी भूली हुई अस्पष्ट सुधि--द्वारा जीत लेनेका आदेश वे उन अबोध बालिकाओंको दे डालेंगे जो जीवनसे अपरिचित हैं। उनकी आज्ञा है, उनके शास्त्रों की आज्ञा है और कदाचित् उनके निर्मम ईश्वरकी भी आज्ञा है, कि वे जीवनकी प्रथम अँगड़ाईको अन्तिम प्राणायाममें परिवर्तित कर दें, आशा की पहली किरणको विषादके निविड़ अन्धकारमें समाहित करदें, और सुखके मधुर पुलकको आँसुओंमें बहा डालें।' —पृ. ४२-४३

जिससे एक बार भी चूक हुई, उसकी क्या दुर्दशा होती है, इसे महादेवीने विशेष रूपसे "अतीतके चलचित्र" के छठे संस्मरणकी मुख्य पात्री अठारह वर्षकी विधवाके चित्र द्वारा समझाया है। उसीपर विचार करते हुए लिखती हैं :

'अपने अकाल वैधव्यके लिए वह दोषी नहीं ठहरायी जा सकती, उसे किसीने धोखा दिया। इसका उत्तरदायित्व भी उसपर नहीं रखा जा सकता। पर उस आत्माका जो अंश, हृदयका जो खंड उसके समान है, उसके जीवन-मरणके लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता, तो केवल इस मिथ्याके आधार पर वह अपने जीवनके इस सत्यको, अपने बालकको अस्वीकार कर देगी? संसारमें चाहे इसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमा-मयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी। इसी कर्तव्यको अस्वीकार करनेका यह प्रबंध कर रही है। किसलिए? केवल इसलिए कि या तो उस वंचक समाजमें फिर लौट कर गंगा-स्नान कर व्रत उपवास, पूजा-पाठ आदिके द्वारा सती विधवाका स्वाँग भरती हुई और भूलोंकी सुविधा पा सके या किसी विधवा आश्रममें पशुके समान नीलामपर कभी नीची, कभी ऊँची बोलीपर बिके, अन्यथा एक एक बूँद विष पीकर धीरे-धीरे प्राण दे।' —पृ. ६०-६१

अवैध सन्तानके विषयमें लिखते हुए देखिये उनकी करुणा किस प्रकार इस तिरस्कृत नवजात शिशुकी ओर प्रवाहित होती है :

'छोटी लाल कली जैसा मुँह नींदमें कुछ खुल गया था और उसपर एक विचित्र सी मुस्कराहट थी, मानो कोई सुन्दर स्वप्न देख रहा हो। इसके आनेसे कितने भरे हृदय सूख गये, कितनी सूखी आँखोंमें बाढ़ आ गयी और कितनों-को जीवनकी घड़ियाँ भरना दूभर होगया, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं। यह अनाहूत, अवांछित अतिथि अपने सम्बन्धमें भी क्या जानता है? इसके

आगमनने इसकी माताको किसीकी दृष्टिमें आदरणीय नहीं बनाया, इसके स्वागतमें मेवे नहीं बँटे, बधाई नहीं गायी गयी, दादा-नानाने अनेक नाम नहीं सोचे, चाची-ताईने अपने नेगके लिए वाद-विवाद नहीं किया और पिताने इसमें अपनी आत्माका प्रतिरूप नहीं देखा।'

कितने सजीव, चित्रमय रूपमें इस 'अवांछित अतिथि' के प्रति समाजका निर्मम तिरस्कार उन्होंने व्यक्त किया है। समाजके इस बर्बर निर्माणका वे कितना मूल्य आंकती हैं, वह तो इसीसे स्पष्ट है कि उन्होंने एक प्रकारसे समाजको चुनौती देकर इन अभागे मां-बेटेको अपनी ममतामयी क्रोड़में आश्रय दिया, और जैसे घोषणा की—ओ धर्मध्वजिओ, तुम्हारे प्रमाण-पत्रोंको मैं कूड़ा-करकट समझती हूं!

महादेवीने नारीकी परवशताकी समस्यापर केवल कविकी करुणा-विगलित दृष्टि डाली हो, सो बात नहीं है। उन्होंने एक गम्भीर समाजशास्त्रीके रूपमें इस समस्यापर चिन्तन किया है। इसीलिये नारीकी इस परवशताका मूल कारण क्या है यह पता लगानेमें भी उन्हें ज़्यादा देर न लगी। उनका यह निश्चित मत है, कि स्त्रियों की इस परवशताके मूलमें उनकी आर्थिक परवशता है और इसलिये उनकी परवशता का उच्छेद तब तक असम्भव है जब तक स्त्री आर्थिक रूपसे स्वावलम्बी नहीं हो जाती। वे कहती हैं:

'अनेक व्यक्तियोंका विचार है कि यदि कन्याओंको स्वावलंबिनी बना देंगे तो वे विवाह ही न करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गृहस्थ-धर्ममें भी अराजकता उत्पन्न हो जायगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूपसे विवाहमें किसी व्यक्तिके साहचर्यकी इच्छा प्रधान होना चाहिए, आर्थिक कठिनाइयोंकी विवशता नहीं।'

—शृंखलाकी कड़ियां, पृ. १०२,

और भी अधिक स्पष्ट शब्दोंमें:

'स्त्रीके जीवनकी अनेक विवशताओंमें प्रधान और कदाचित् उसे सबसे अधिक जड़ बनानेवाली अर्थसे सम्बन्ध रखती है और रखती रहेगी क्योंकि वह सामाजिक प्राणियोंकी अनिवार्य आवश्यकता है।'

'अर्थका विषय-विभाजन भी एक ऐसा ही बन्धन है जो स्त्री-पुरुष दोनोंको समान रूपसे प्रभावित करता है।'

'समाजने स्त्रीके सम्बन्धमें अर्थका ऐसा विषय-विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्गसे लेकर सम्पन्न वर्गकी स्त्रियों तककी स्थिति दयनीयही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकारसे ही वंचित नहीं है। वरन् अर्थके सम्बन्धमें सभी क्षेत्रोंमें एक प्रकारकी विवशताके बन्धनमें बँधी हुई है। कहीं पुरुषने न्यायका सहारा लेकर और कहीं अपने स्वामित्वकी शक्तिसे लाभ उठाकर

उसे इतना अधिक परावलम्बी बना दिया है, कि वह उसकी सहायताके बिना संसार-पथमें एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती।'

'इस प्रकार स्त्रीकी स्थिति 'नितान्त परवशता' की हो गयी और पुरुषकी स्थिति 'स्वच्छन्द आत्मनिर्भरता' की। यह स्थिति-वैषम्य ही नारी-पुरुष सम्बन्धकी विषमताके मूलमें है।'

महादेवीके उपर्युक्त उद्धरणोंको लेनिनकी इस युक्तिसे मिलाइये :

'जब तक स्त्रियाँ घरेलू कामकाजमें फँसी रहती हैं, तब तक उनकी परवश स्थिति रहती है। स्त्री जातिकी पूर्ण स्वाधीनताके लिये और उन्हें सच्चे अर्थमें पुरुषोंका समकक्ष बनानेके लिये आवश्यक है, कि हम सामाजिक उत्पादन प्रणालीका सूत्रपात करें और स्त्रियोंको इस बातका अवसर दें, कि वे भी पुरुषों ही की भाँति सामाजिक उत्पादनके श्रममें हाथ बँटा सकें। तब स्त्री और पुरुषकी समान स्थिति हो जायगी।'[१]

अपने इसी विचारको लेनिन एक स्थलपर और अधिक विशद रूपमें प्रस्तुत करते हैं :

'युगों पहले पश्चिमी योरपके सभी स्वाधीनता अन्दोलनोंके प्रतिनिधियोंने दशाब्दियों तक ही नहीं शताब्दियों तक इस बातका आन्दोलन किया कि (स्त्री और पुरुषके विषमतामूलक) पुराणपंथी, जड़ क़ानूनोंको उठा दिया जाय और स्त्री तथा पुरुषमें क़ानूनी समता स्थापित कर दी जाय। लेकिन एक भी योरोपीय गणतांत्रिक राष्ट्र, वह तक जो सबसे आगे बढ़ा हुआ था, ऐसा न कर सका, क्योंकि जहाँ पूँजीवादका राज्य है, जहाँ ज़मीन और कल-कारख़ानोंपर व्यक्तिगत स्वामित्वकी रक्षाकी जाती है, जहाँ पूँजीकी सत्ता अचल है, वहाँ पुरुषका (नारी पर) स्वामित्व भी अटल रहेगा। रूसमें हमें स्त्री और पुरुषकी समता स्थापित करनेमें सफलता केवल इसलिये मिली कि ७ नवम्बर १९१७ को हमारे यहाँ मज़दूरोंका राज्य स्थापित हुआ। × × × कमकरोंकी सरकार, सोवियत सरकारने अपनी स्थापनाके चन्द महीनोंके अन्दर ही स्त्रियोंसे सम्बद्ध क़ानूनोंमें क्रान्ति ला दी। स्त्रियोंको (पुरुषोंके) अधीन रखनेवाले क़ानूनोंका लेशमात्र भी अब सोवियत प्रजातन्त्रमें नहीं रह गया है। मेरा मतलब ख़ास तौरपर उन क़ानूनोंसे है जो स्त्रीकी दुर्बलताका अनुचित लाभ उठाते थे और उसे हीन तथा बहुधा अपमानजनक स्थितिमें डाल देते थे—मेरा मतलब तलाक़के तथा अवैध सन्तानसे सम्बद्ध क़ानूनोंसे है, स्त्रीके इस अधिकारसे है कि वह अपनी सन्तानके पितापर गुज़ारेके लिये दावा दायर कर सके।'[२]

१. Selected Works, Vol. IX. p. 496.

२. उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ ४९५

स्पष्ट है कि नारी-स्वाधीनताके प्रश्नपर महादेवीके विचार विज्ञान-सम्मत रूपमें समाजवादसे प्रभावित हैं। नारीकी परवशताका जो मूल कारण समाजवाद बतलाता है, महादेवी भी अपने धर्मक्षेत्रके आधारपर उससे सहमत हैं। जीवनके प्रति महादेवीका दृष्टिकोण स्वस्थ गांधीवादी है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु नारी-स्वाधीनता के प्रश्नपर वे समाजवादके ही अधिक समीप हैं। गांधीवादमें नारीको घर ही में सीमित रखनेका जो आग्रह है, उसे महादेवी स्वीकार नहीं करतीं। गार्हस्थिक उत्तर-दायित्वोंकी पवित्रता आदिके सम्बन्धमें जो लम्बी-चौड़ी बातें उस ओरसे कही जाती हैं, उनका भी महादेवीपर कोई प्रभाव नहीं है। महादेवीने रोगकी जड़ पहचान ली है। वे इस बातको बिलकुल अस्वीकार करती हैं कि स्त्रीका कार्यक्षेत्र केवल घर है; घरके बाहर पुरुषका कार्यक्षेत्र है, जहाँ स्त्रीको पैर भी न रखना चाहिये। कहती हैं :

> ‘वास्तवमें स्त्री भी अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन् घरके हर समाजका एक विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक है, अतः उसका कर्तव भी अनेकाकार होगया है...’

महादेवीका मत है कि स्त्रीका कार्यक्षेत्र घर भी है और बाहर भी। घरके दायित्वोंके प्रति ‘आधुनिकाओं’ का जो विद्रोह है, उसे भी वे स्वीकार नहीं करतीं और घरके दायित्वों तक ही सीमित रह जानेवाली बातको, घरकी गुलामीको भी नहीं स्वीकार करतीं। उनका रास्ता मध्यका है, जिसका मूल मन्त्र है :

> ‘समाजको किसी न किसी दिन स्त्रीके असन्तोषको सहानुभूतिके साथ समझकर उसे ऐसा उत्तर देना होगा, जिसे पाकर वह अपने आपको उपेक्षित न माने और जो उसके मातृत्वके गौरवको अक्षुण्ण रखते हुए भी उसे नवीन युगकी सन्देशवाहिका बना सकनेमें समर्थ हो।’

यह घर और बाहरकी सनातन समस्याको सामञ्जस्यपूर्ण ढंगसे समन्वयके आधारपर हल करनेका प्रयास है और शायद इस प्रश्नपर यही स्वस्थतम, प्रगति-शील दृष्टिकोण भी है। ‘आधुनिका’ की, जो सहज प्रवृत्ति घरसे सम्पूर्ण रूपमें सम्बन्ध-विच्छेद कर लेनेकी है, वह ध्वंसात्मक है, रचनात्मक नहीं। उसके सम्बधमें महादेवी कहती हैं :

> ‘अनुकरणको चरम लक्ष्य माननेवाली महिलाओंने भी अपने व्यक्तित्वके विकासके लिये सत्पथ नहीं खोज पाया, परन्तु उस स्थितिमें उसे खोज पाना सम्भव भी नहीं था। उन्हें अपने मूक छायावत् निर्जीव जीवनसे ऐसी मर्म व्यथा हुई कि उसके प्रतिकारके लिये उपयुक्त साधनोंके आविष्कारका अवकाश ही न मिल सका। अतः उन्होंने अपने आपको पुरुषोंके समान ही कठिन बना लेनेकी कठोर साधना आरम्भ की। कहना नहीं होगा कि इसमें सफलता का अर्थ स्त्रीके मधुर व्यक्तित्वको जलाकर उसकी भस्मसे पुरुषकी रुक्ष मूर्ति गढ़ लेना है। फलतः आजकी विद्रोहशील नारी व्यावहारिक जीवनमें अधिक

कठोर है, गृहमें अधिक निर्मम और शुष्क, आर्थिक दृष्टिसे अधिक स्वाधीन, सामाजिक क्षेत्रमें अधिक स्वच्छन्द, परन्तु अपनी निर्धारित रेखाओंकी संकीर्ण सीमाकी बन्दिनी है । '

महादेवी 'आधुनिका' के इस 'विद्रोह' को आत्महत्या समझती हैं । उनका विश्वास है कि घर और बाहर दोनों ही स्त्रीके कार्यक्षेत्र हैं, दोनोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है, वस्तुतः दोनों एक दूसरेके पूरक हैं और यदि संतुलनके साथ दोनोंको साथ लेकर चलनेका प्रयत्न किया जाय तो थोड़े ही श्रमसे इस दिशामें निश्चय ही सफलता मिल सकती है ।

महादेवी इतना कहकर ही संतोष नहीं कर लेतीं कि स्त्रीका कार्य-क्षेत्र घरके बाहर भी है । वे अलग-अलग काम गिनाती भी हैं । जैसे महिला-साहित्य व बाल-साहित्यकी रचना । इस दो प्रकारके साहित्यकी रचनामें स्त्रियोंको ही सर्वाधिक सफलता मिलनेकी सम्भावना है क्योंकि ये दोनों विषय एक प्रकारसे उन्हींसे सम्बन्ध रखते हैं । इस साहित्य रचनाके अलावा शिक्षा, चिकित्सा और क़ानूनके क्षेत्रोंमें वे विशेष रूपसे सहायक तथा उपयोगी हो सकती हैं । बालक-बलिकाओंकी शिक्षा, रोगियोंकी सेवा-सुश्रूषा आदिका कार्य तथा बाल एवं महिला साहित्यकी रचना निश्चय ही ऐसे मार्ग हैं जिनके सम्बन्धमें महादेवीका उपर्युक्त सिद्धान्त लागू किया जा सके । अर्थात् वे ऐसे कार्य हैं जो उसके मातृत्वको अक्षुण्ण रखते हुए भी उसे नवीन युग की सन्देशवाहिका बना सकनेमें समर्थ हैं । महादेवीके इन विचारोंका पूरा महत्व तब समझमें आता है जब हम संसारकी अकेली समग्र क्रान्तिकारी शासन-सत्ता, सोवियत रूसमें स्त्रियोंकी स्थिति पर नज़र दौड़ाते हैं । वहाँ भी स्त्री जातिका विकास उसके मातृत्वकी रक्षा मात्रके आधारपर नहीं, बल्कि उसके विकासके आधारपर हुआ है । सोवियत राजने स्त्रीके मातृत्वको विकसित करके स्त्री जातिका उन्नयन किया है और उसे सोवियन समाजका उपयोगी सदस्य बनाया है, उसके मातृत्वको अपहृत या विस्मृत करके नहीं । यही कारण है कि सोवियत रूसमें स्त्रियोंका उन्हीं क्षेत्रोंमें सबसे अधिक विकास हुआ है जिनकी ओर महादेवीने संकेत किया है । विभिन्न पेशोंमें सोवियत नारीका क्या आनुपातिक स्थान है, इसके आँकड़े देखनेपर पता चलता है कि वैज्ञानिक खोजके कार्यमें स्त्रियोंकी संख्या ३४ प्रति शत थी, विश्वविद्यालयों के कुल विद्यार्थियोंमें महिला विद्यार्थियोंकी संख्या ४३·१ प्रति शत थी, चिकित्सकों की कुल संख्यामें आधेसे ऊपर (५०·६ प्रति शत) महिलाएँ थीं और अध्यापनके क्षेत्रमें तो स्त्रियोंने पुरुषोंको बिलकुल पीछे छोड़ दिया था, अध्यापिकाओंकी संख्या कुलकी ६४·८ प्रति शत थी । कृषि और कल-कारखानोंकी मजदूरीके कार्यमें भी स्त्रियाँ क्रमशः ३७·१ और ३९·८ प्रति शत थीं, जो कि कम नहीं है । लेकिन शिक्षा

सप्रह

और चिकित्सा ही वे दो मुख्य कार्यक्षेत्र हैं जिनमें स्त्रियाँ निश्चित रूपसे पुरुषोंसे आगे हैं और उत्तरोत्तर आगे होती जाती हैं।

महादेवीने अत्यन्त गम्भीर और शान्त मनसे नारी समस्याके विभिन्न पहलुओं-पर विचार किया है और तत्सम्बन्धी अपने निष्कर्ष वास्तविक जीवनके अपने परिचयके आधारपर बनाये हैं। यही कारण है कि उन्होंने गांधीवादी सुधारवादको बिलकुल ठुकरा दिया है और आमूल क्रान्तिका मार्ग अपनाया है। उनके विचारों पर यदि किसी विचारधाराका प्रभाव पड़ा है, तो वह वैज्ञानिक समाजवाद है। हो सकता है कि उनके निष्कर्ष, उनकी चिन्तना, सर्वथा मौलिक हों। उस दशामें हम यही कहेंगे कि महादेवी जीने जीवनके यथार्थको स्वीकार करके इस समस्यापर विचार किया है, इसलिये उनके सामाजिक निष्कर्ष अनिवार्यतः क्रान्तिकारी समाजवादकी ओर झुकते हैं क्योंकि समाजवाद स्वयं कठोर धरतीकी, जीवनकी, यथार्थ समस्याओंसे उपजा हुआ, और विकृत यथार्थको बदलकर उसके स्थानपर स्वस्थ यथार्थको स्थापित करनेवाला जीवन-दर्शक है। समाजवादके सिद्धान्तोंपर संचालित सोवियत रूसका विधान अपनी १२२ वीं धारामें यदि नारीकी स्वाधीनताकी घोषणा इन शब्दोंमें करता है कि—

> 'सोवियत रूसकी स्त्रियोंको जीवनके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा राज्य-सम्बन्धी प्रत्येक क्षेत्रमें पुरुषोंके बराबर अधिकार होंगे (और) इन अधिकारोंका उपयोग करनेके लिये स्त्रियोंको अधिकसे अधिक सुविधाएँ दी जायँगी।'
>
> —तो उसका यही कारण है कि ज़ारशाही शासनकालमें रूसकी स्त्रियोंकी वही दशा थी जो आज भारतवर्षकी स्त्रियोंकी है। ज़ारशाही शासनकालके काले दिनोंमें स्त्रीको केवल सामाजिक उत्पीड़नका ही सामना नहीं करना पड़ता था। पारि-वारिक जीवनमें भी न तो स्त्रियोंके कोई अधिकार थे और न अत्याचारसे बचावके साधन। किसान स्त्रियोंका पुराने जमानेके परिवारमें क्या स्थान था, इसके ऊपर विचार करते हुए स्तालिनने कहा था—"शादी होनेके पहले परिवारमें काम करनेवालोंमें उसका स्थान पहला था। वह अपने पिताके लिये काम करती थी और एड़ी-चोटीका पसीना एक करनेके बाद भी पिताके यही शब्द उसे सुननेको मिलते थे, 'मैं तुम्हारा पालन कर रहा हूँ।' शादी होनेके बाद वह अपने पतिके लिये काम करती थी और उसकी प्रत्येक आज्ञाका सिर झुकाये पालन करती थी। उसके बदले पुरस्कारमें उसे पतिसे यही शब्द सुननेको मिलते थे—'मैं तुम्हारा पालन कर रहा हूँ।'
>
> **—समाजवादी रूसकी स्त्रियां, पृ. २३**

नारी समस्यापर महादेवीके विचार आद्यन्त समाजवादकी ओर उन्मुख हैं और उनकी पुष्ट सामाजिक चेतनाका परिचय देते हैं। निम्न उद्धरणमें वे अपने क्रान्तिकारी विचार अत्यन्त सुलझे हुए और संतुलित ढंग से रखती हैं :

'आरंभमें प्रायः सभी देशोंके समाजने स्त्रीको कुछ स्पृहणीय स्थान नहीं दिया परंतु सभ्यताके विकासके साथ-साथ स्त्रीकी स्थितिमें भी परिवर्तन होत गया। वास्तवमें **स्त्रीकी स्थिति समाजका विकास नापनेका मापदण्ड कहा जा सकता है।** नितान्त बर्बर समाजमें स्त्री पर पुरुष वैसा ही अधिकार रखता हैं, जैसा वह अपनी स्थावर सम्पत्ति पर रखनेको स्वतंत्र हैं, इसके विपरीत पूर्ण विकसित समाजमें स्त्री पुरुषकी सहयोगिनी तथा समाजका आवश्यक अंग मानी जाकर माता तथा पत्नीके महिमामय आसन पर आसीन है।'

—पृ. १२८

महादेवीका नारी-स्वधीनताका स्वप्न कमसे कम एक देशमें जीवनकी वास्तविकता पा चुका है। संसारके कमसे कम छठें भागपर एक ऐसा पूर्ण विकसित समाज है जो महत्तम भारतीय आदर्शके अनुरूप नारीको वह मान और आदर देता है, जो मान और आदर आज तक स्वयं भारतीय नारीको नहीं मिल सका। महादेवीने यदि सोवियत नारीके सम्बन्धमें यथेष्ट बातें पता लगाकर उनके आलोकमें भारतीय नारीकी समस्यापर विचार किया होता तो उसके वर्तमान जीवनकी विभीषिका और भविष्यके स्वप्नोंके बीच एक लंबी खाई न होकर कर्तव्यका एक सेतु होता और उनके विचारोंकी एक बड़ी कमी दूर हो जाती अर्थात् आजकी परवश भारतीय नारीके लिये तत्काल कर्मका सन्देश—क्योंकि स्वप्न सार्थक तब होता है जब उसे कर्तव्यका आकार मिलता है।

महगू महँगा रहा

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला

आजकल पण्डित जी देश में बिराजते हैं।
माताजी को स्वीज़रलैण्ड के अस्पताल,
तपेदिक़ के इलाज के लिये छोड़ा है।
बड़े भारी नेता हैं।
कुइरीपुर गांव में व्याख्यान देने को
आये हैं मोटर पर
लन्डन के गेज्युएट,
एम. ए. और बैरिस्टर,
बड़े बाप के बेटे,
बीसियों भी पर्तों के अन्दर, खुले हुए।
एक-एक पर्त बड़े-बड़े विलायती लोग।
देश की भी बड़ी-बड़ी थातियाँ लिये हुए।

राजों के बाजू-पकड़ बाप की वकालत से
कुर्सी रखनेवाले अनुल्लघ्य विद्या से
देशी जनों के बीच
लेंड़ी ज़मीदारों को आंखों तले रखे हुए;
मिलों के मुनाफ़े खानेवालों के अभिन्न मित्र;
देश के किसानों, मज़दूरों के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए।
गलेका चढाव बोझुआज़ी का नहीं गया।
धाक, रूसके बलसे ढीली भी, जमी हुई;
आंखपर वही पानी;
स्वर पर वही संवार।

गावके अधिक जन कुली या किसान हैं;
कुछ पुराने परजे जैसे धोबी, तेली, बढ़ई,
नाई, लोहार, बारी, तरकिहार, चुड़िहार,
बेहना, कुम्हार, डोम, कुइरी, पासी, चमार,
गंगापुत्र, पुरोहित, महाब्राह्मण, चौकीदार,
कामकाज, दिवाली-जैसे परबोंके दिन
मनों लेजानेवाले पिछली परिपाटी से;
हुए, मरे, ब्याहमें दीवाला लाते हुए,
ज़मींदारके वाहन।
बाक़ी परदेशमें कोठियोंके नौकर हैं,
महाजनों के दबैल,
स्वत्त्व बेचकर विदेशी माल बेचनेवाले
शहरोंके सभासद।
ऐसेही प्रकार के प्राकार से घिरे
लोगों में भाषण है।
जब भी अफ़ीम, भांग गांजा, चरस, चन्डू, चाय
देशी और विलायती तरह-तरह की शराब
चलती है मुल्क में,
फिर भी आज़ादीकी हांकका नशा बड़ा;
लोगों पर चढता है।
विपत्तियां कई हैं घूस और डंड की;
उनमे बचने के लिए
रास्ता निकाला है। सभाओं में आते हैं
गांवों के लोग कुल।
एक एक आगए।
पण्डितजी कांग्रेस के चुनाव पर बोले;
आज़ादी लेते हैं, एक साल और है;
आततायियों से देस पिस-पिसकर मिट गया;

हमको बढ़ जाना है;
चैन नहीं लेना है जबतक विजयी न हों।
जनता मन्त्रमुग्ध हुई।
ज़मींदार भी बोले जेल हो आनेवाले,
कांग्रेस-उम्मीदवार। सभा विसर्जित हुई।

महगू सुनता रहा।

कम्पू को लादता है लकड़ी , कोयला, चपला।
लुकुआ ने महगू से पूछा, "क्यों हो महगू, कुछ
अपनी तो राय दो!
आजकल, कहते हैं वे भी अपने नहीं!"
महगू ने कहा, " हां, कम्पू में किरिया के
गोली जो लगी थी,
उसका कारण पण्डितजी का शागिर्द है;
रामदास को कांग्रेसमैन बतानेवाला,
जो मिल का मालिक है।
यहां भी वह ज़मींदार बाजू से लगा ही है।
कहते हैं, इनके रुपये से ये चलते हैं,
कभी-कभी लाखों पर हाथ साफ़ करते हैं।"
लुकुआ घबरा गया। "भला फिर हम कहां जायं?"
महगू से प्रश्न किया।
महगू ने कहा, "एक उड़ी ख़बर सुनी है,
हमारे अपने हें यहाँ बहुत छिपे हुए लोग,
मगर चूँकि अभी ढीला-पोली है देशमें,
अख़बार व्यापारियों ही की सम्पत्ति हैं,
राजनीति कड़ी से भी कड़ी चल रही है,
वे सब जन मौन हैं इन्हें देखते हुए,
जब ये कुछ उठेंगे
और बड़े त्यागके निमित्त कमर बांधेंगे
आयेंगे वे जन भी देशके धरातल पर;
अभी अख़बार इनके नाम नहीं छापते।
ऐसा ही पहरा है।"
"तो फिर कैसा होगा?" लुकुआ ने प्रश्न किया।
"जैसा तू लुकुआ है, वैसा ही होना है;
बड़े-बड़े आदमी धन मान छोड़ेंगे
तभी देश मुक्त है;
कविजी ने पढ़ा था, जब तुम बदले नहीं;
अपने मन में कहा मैंने, मैं महगू हूँ;
पैरोंकी धरती आकाशको भी चली जाय,
मैं कभी न बदलूँगा, इतना महँगा हूँगा।"

———

वर्षा

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

घने-घने बादल हैं,
एक ओर गड़गड़ाते;
पुरवाई चलती है;
जुही फूलों से भरी;
दूर तक हरियाली ज्वार की, अरहर की,
सन, मूंग, उड़द और
धानों के हरे खेत;
दूर के पहाड़ों की और घनी नीलिमा;
तालों में करेंबुए;
कोकनद खिले हुए;
ढोर चरते हुए;
कहीं हिरनों का झुंड;
आम पकते हुए;
बागों में लगी भीड़
मर्दों की, औरतों की,
बच्चों की, बुड्ढों की;
आम बीन-बीन कर
पंजों बाटते हुए
आमों के हिस्सेदार
गांव-गांव के किसान।
खाने को एक-एक हिस्सा लिये हुए
ज़मींदार लोगों से।
नाले बहते हुए,
नदियां तराई लिये।
घने कास उगे हुए;
युवक अखाड़ों में और ज़ोर करते हुए।
देश के प्रतीक सभी,
देश की भलाई की बातें सोचकर करते।

★

साग

यशपाल

अगस्त १९४२ में देशके नेताओंने आज़ादीके लिये आख़िरी निःशस्त्र जंग आरम्भ-कर देनेका प्रस्ताव पास कर दिया। सरकारने आन्दोलन आरम्भ हो सकनेसे पहले ही नेताओंको गिरफ़्तारकर जेलोंमें भर दिया। नेताहीन जनताने भड़ककर विदेशी सरकारके प्रति जो विद्रोह किया उसके परिणाममें ज़िला जेल क़ैदियोंसे भर गयी।

इन क़ैदियोंमें से दो के नाम जेलके अधिकारियोंको अबतक याद हैं। एकका नाम विशे-शर सिंह और दूसरेका नाम रियासत खाँ। दोनों ही घायल थे। विशेशर सिंहकी जांघमें और रियासत खाँके कन्धेमें गोली मौजूद थी। अंग्रेज़ सिविल सर्जन साहबने जेलके हस्पताल में चीर फाड़ कर दोनोंकी गोलियाँ निकालीं और दवा दारू की। इस कर्तव्यका पालन करते समय साहबका चेहरा छुहारेकी तरह सिकुड़ गया। आख़िर उन्होंने अपने चारों ओर अदबसे खड़े हिंदुस्तानी मुसाहिबोंको सुनाकर कह ही दिया–"इन बदमाश लोगने साहब लोगको बँगलेमें जला कर मारा है, थाना जलाया है।"

गोलियोंके घाव ठीक हो सकनेसे पहले ही जेल सुपरिंटेंडेंट सिविल सर्जन साहबके हुक्मसे विशेशर सिंह और रियासत खाँके पाँवमें लोहेकी भारी बेड़ियाँ डाल दी गयीं। ऐसे भयंकर बाग़ियोंको दण्ड दे प्रजाको शिक्षा देनेके लिये सेशनजज साहबने स्वयं जेलमें पधारकर उनपर मुकद्दमा चलाया और फाँसीकी सज़ाका हुक्म दे दिया।

सरकारी क़ायदा है कि फाँसीकी सज़ा पाये प्रत्येक अभियुक्तके लिये हाईकोर्टमें अपील की जाती है। ब्रिटिश सरकारके न्याय और रहमका क़ायदा पूरा करनेके लिये उनकी तरफ़से भी हाईकोर्टमें अपील की गयी। हाईकोर्टसे फाँसीकी सज़ा रद्द हो जाने या सज़ापर हाईकोर्टकी मंजूरीकी मोहर लग जानेकी प्रतीक्षामें उन्हें लोहेकी मोटी छड़ों जड़े दरवाजेकी छोटी-छोटी कोठड़ियोंमें अलग-अलग बन्द कर दिया गया।

सरकारसे बग़ावत कर थाना जलाने और अंग्रेज़ लोगोंपर हमला कर, उनकी बन्दूक़की गोलीकी परवाह न कर, उनके बँगलेको आग लगा साहब लोगोंको मुर्ग़मुसल्लमकी तरह भून डालने वालोंके जेलमें बन्द होनेका समाचार ज़िलेके सब साहब लोगों तक प्रहुँच गया। जैसे सरकस आनेका समाचार पा लोग कौतुहलसे पिंजड़ेमें बन्द शेर चीतोंको देखने जाते हैं वैसे ही मेम और साहब लोग इन क़ैदियोंको देखने आते थे। परन्तु इन दर्शकोंके चेहरोंपर कौतुहलका भाव नहीं, घोर घृणा ही रहती थी। सिविल सर्जन साहब जेलका 'राउंड' करते समय इन क़ैदियोंकी कोठड़ीके सामने आनेपर और कुछ नहीं तो इतना तो कहना न भूलते–" मर्डरर्स ! " (हत्यारे !) और उनका मुँह इस शब्दसे इतना कड़वा हो जाता कि वह एक ओर थूकनेके लिये मजबूर हो जाते।

साहबका रुख पहचान हिन्दुस्तानी अफ़सर लोग जेलर, डिप्टी साहब, डाक्टर वार्डर और क़ैदी वार्डर सभी इन क़ैदियोंके साथ विशेष सख़्ती करते थे। कभी कोई दूसरा क़ैदी इन कोठड़ियोंकी छायाके समीप तक न फटक पाता। इन क़ैदियोंके सामने आते ही अफ़सरों और सिपाहियोंके चेहरे पत्थरकी तरह भाव-शून्य और कठोर हो जाते

विशेशर सिंह और रियासत खॉ अपने अपराधका बोझ जानते थे। उन्हें दया और क्षमाकी कोई आशा न थी। गलेमें फन्दा पड़ने वाले दिनकी प्रतीक्षा वे देशभक्ति और शहादतके गाने गुनगुना कर करहे थे। परन्तु एक निराशामय विस्मय था—इन तमाम हिन्दुस्तानियोंको उनसे द्वेष और भय क्यों है ? अंग्रेजोंके चेहरेपर क्रोध और घृणाका भाव वे स्वाभाविक समझते थे और उससे एक सन्तोष भी अनुभव होता था। परन्तु हिन्दुस्तानियोंको उनसे क्या जलन ! जिस अंग्रेज़ सरकारसे लड़नेके लिये वे उठे थे उस सरकारका अंग्रेज़ तो कभी-कभी ही दीखता है। वह सरकार तो स्वयं उस जैसोंके ही बल पर चल रही है। देशको आज़ाद किया जाय तो किससे और शत्रुता हो तो किससे !

इन हत्यारे बाग़ियोंके ख़िलाफ़ साहब लोगोंके क्रोध, घृणा और प्रतिहिंसाका अन्त न था। दोनोंके लिये हाइकोर्टसे फॉसीकी सज़ाकी स्वीकृति जल्दी ही आ गयी। इन्हें फाँसीकी रस्सीसे छटपटाते देखनेके लिये जेलके बड़े साहब और बग़ावतसे ज़िलेकी बिगड़ी दशा सुधारनेके लिये आये अंग्रेज अफ़सर तड़के ही जेल पहुँचे।

अभियुक्तोंके सिरपर मृत्युका फन्दा झूल रहा था और सामने खड़े शत्रुके चेहरे पर प्रतिहिंसा थी। इस प्रतिहिंसासे परास्त न होनेके लिये अभियुक्तोने चिल्लाकर पुकार लगायी –'इन्क़लाब जिन्दाबाद ! भारतमाता की जय !' और उन्होंने अपने चारों ओर खड़े हिन्दुस्तानियोंकी ओर देखा। वे चेहरे काठकी मूर्तियोंकी भॉति भावशून्य और स्थिर थे। जिनके लिये वे जान दे रहे थे उनसे मृत्युके क्षणमें भी अपनेपनका कोई संकेत मरने वालोंको न मिला। केवल शत्रुके चेहरेपर दॉत पीस लेनेका भाव था।

* * *

विशेशर सिंह और रियासत खॉके रोते हुये सम्बन्धी जेलके फाटकपर अपने आदमियोंकी लाशें पानेके लिये खड़े थे। बाग़ियोंकी लाशका प्रदर्शन शहरमें होनेसे शान्ति भंग होनेका अन्देशा था। फॉसी पाने वाले बाग़ियोंके सम्बन्धियोंकी लाशोंके लिये प्रार्थना कलक्टर साहबने स्वीकार न की।

सिविल सर्जन साहबके हुक्मसे हिन्दुस्तानी जेलर हाज़िर हुए। साहबने हुक्म दिया—दोनों बाग़ियोंकी लाशें जेलके भीतर ही दफ़नाई जायँ। दॉत पीसकर साहबने कहा–"और इनकी लाशोंपर मर्सा (विलायती चौराई) का साग बोया जाय"।

मर्साका साग बहुत जल्द तैयार हो जाता है। क़ब्रोंकी गहराई तक भुरभुरी ज़मीन पा वह और जल्दी खूब ऊँचा उठ आया। एक दिन सागको खूब हराभरा

देख सिविल सर्जन साहबने वह साग सब साहब लोगोंके यहाँ और साहब लोगोंके क्लबमें भेजनेकी फ़रमाइश की ।

जेल भरमें ख़बर फैल गयी—बाग़ियोंकी क़ब्रोंका साग आज साहब लोगोंके यहाँ गया है । रात पड़नेपर जेल बन्द हुआ और क़ैदी बारकोंमें बन्द हो गये । बारकोंमें अपने-अपने मिट्टीके ओटेपर लेटे प्रत्येक क़ैदीके मनमें सागकी बात थी । प्रत्येक क़ैदी कल्पना कर रहा था : हिन्दुस्तानीको अंग्रेज़ खा रहा है । परन्तु प्रत्येक क़ैदी दाँत भींचकर मनकी बात मुँहमें दबाये था । ऐसी बात मुँहसे निकालनेकी रिपोर्ट अगर साहब तक पहुँच जाय !

जेलके प्रत्येक अफ़सरके मनमें सागकी बात थी । जेलर और डाक्टर दूधिया मसहरीमें पंखेके नीचे दिलमें उबाल लिये तकियेपर मुँह दबाये पड़े थे । कम्पाउण्डर और बाबू लोग चादरमें मुँह छिपाये यही सोच रहे थे । बड़े वार्डर लोग फटे कम्बलपर औंधे मूँह और केवल बीस रुपया माहवार पानेवाले नये सिपाही खुर्रैटी खटियापर आँखें मूँदे मनमें यही कल्पना कर रहे थे कि अंग्रेज हिन्दुस्तानीको खा रहा है परन्तु मनकी बात शब्द बन किसीके होंठ पर न आ सकती थी ।

ज़िलेमें अमन क़ायम हो जानेकी ख़ुशीमें उस दिन साहब लोगोंके क्लबमें डिनर हुआ । हिन्दुस्तानी बैरे स्वच्छ तश्तरियोंमें मर्साके सागका सलाद साहब लोगोंके सामने झुक-झुककर पेश कर रहे थे । सागकी कहानी बैरा लोगोंने भी सुनी थी । उस सागको देखकर दहशतसे उनके दिल भी डूब रहे थे । आतंककी बेबसीमें असमर्थोंकी आहें हवामें अलग-अलग उड़कर व्यर्थ होती चली जा रही थीं—बिखरी हुई, दबी हुई चिन्गारियाँ बुझती चली जा रही थीं ।

सन्यासी का गीत

[श्री स्वामी विवेकानंदके ' सांग ऑफ़ द सन्यासी ' का रूपांतर]

सुमित्रानन्दन पन्त

छेड़ो हे वह गान, अनंतोद्भव अबंध वह गान,
विश्वतापसे शून्य गह्वरोंमें गिरिके अम्लान
निभृत अरण्य प्रदेशोंमें जिसका शुचि जन्मस्थान :
जिनकी शान्ति न कनक, काम, यश, लिप्साका निश्वास
भंग कर सका : जहाँ प्रवाहित सत्-चित् की अविलास
स्रोतस्विनी, उमड़ता जिसमें वह आनंद अयास :
गाओ, बढ़ वह गान, वीर सन्यासी, गूँजे व्योम,
ओम् तत्सत् ओम्

तोड़ो सब शृंखला, उन्हें निज जीवन बंधन जान,
हों उज्वल कांचन के, अथवा क्षुद्र धातु के म्लान;
प्रेम, घृणा, सद्, असद्—सभी ये द्वन्द्वों के संधान !
(दास सदा ही दास : समादृत वा ताड़ित,— परतन्त्र,)
स्वर्ण निगड़ होने से ही वे सुदृढ़ न बंधन यंत्र ?
अतः उन्हें सन्यासी ! तोड़ो, छिन्न करो, गा मंत्र—
ओम् तत्सत् ओम्

अंधकार हो दूर ! —ज्योति-छल, जल बुझ बारंबार
दृष्टि भ्रमित करता, तह पर तह मोह तमस विस्तार !
मिटे अजस्र तृषा जीवन की, जो आवागम-द्वार,
जन्म-मृत्यु के बीच खींचती आत्मा को अनजान ;
विश्वजयी वह आत्मजयी जो,—मानो इसे प्रमाण,
अविचल अतः रहो सन्यासी ! गाओ निर्भय गान,
ओम् तत्सत् ओम्

'बोओगे पाओगे,' 'निश्चित कारण कार्य विधान,'
कहते, 'शुभका शुभ औ' अशुभ अशुभका फल' धीमान् ;
दुर्निवार यह नियम : जीव के नाम-रूप परिधान
बन्धन हैं,—सच है : पर दोनों नाम-रूपके पार
नित्य मुक्त आत्मा करती है बंधनहीन विहार !
तुम वह आत्मा हो सन्यासी ! बोलो वीर उदार,
ओम् तत्सत् ओम्

ज्ञान शून्य वे, जिन्हें सूझते स्वप्न सदा निस्सार,—
माता, पिता, पुत्र औ' भार्या, बान्धव-जन, परिवार !
लिङ्ग मुक्त है आत्मा !—किसका पिता, पुत्र या दार ?
किसका शत्रु मित्र वह ? जो है एक, अभिन्न, अनन्य !
उसी सर्वगत आत्माका अस्तित्व, नहीं है अन्य !
कहो 'तत्वमसि' सन्यासी ! गाओ हे, जग हो धन्य,
ओम् तत्सत् ओम्

एक मात्र है केवल आत्मा,—ज्ञाता, चिर निर्मुक्त,
नामहीन वह रूपहीन, वह है रे चिह्न, अयुक्त,
उसके आश्रित माया,—रचती स्वप्नों का भव-पाश,
साक्षी वह, जो पुरुष प्रकृतिमें पाता नित्य प्रकाश,
तुम वह हो, बोलो सन्यासी ! छिन्न करो तम-तोम
ओम् तत्सत् ओम्

कहाँ खोजते उसे ? सखे, इस ओर कि या उसपार ?
मुक्ति नहीं है यहाँ ! वृथा सब शास्त्र, देव गृह द्वार !
व्यर्थ यत्न सब,—तुम्हीं हाथमें पकड़े हो वह पाश
खींच रहा जो साथ तुम्हें ! तो उठो, बनो न हताश !
छोड़ो कर से दाम ! कहो सन्यासी,—विहँसे रोम,
ओम् तत्सत् ओम्

कहो,—' शांत हों सर्व, शांत हों सचराचर अविराम :
' क्षति न उन्हें हो मुझसे : मैं ही सब भूतों का ग्राम :
' ऊँच-नीच द्यो-मर्त्य-विहारी—सबका आत्माराम !
' त्याज्य लोक परलोक मुझे, जीवन तृष्णा, भवबंध,
स्वर्ग, मही, पाताल,—सभी आशा-भय सुखदुख द्वंद्व !
इस प्रकार काटो बंधन, सन्यासी ! रटो अबंध

ओम् तत्सत् ओम्

देह रहे जावे, मत सोचो, तन की चिन्ता भार !
उसका कार्य समाप्त : ले चले उसे कर्मगति-धार !
हार उसे पहनावे कोई, करे कि पाद-प्रहार,
मौन रहो ! क्या रहा कहो निन्दा या स्तुति-अभिषेक,
स्तावक स्तुत्य, निन्द्य औ' निन्दक जब कि सभी हैं एक !
अत: रहो तुम शांत, वीर सन्यासी ! तजो न टेक,

ओम् तत्सत् ओम्

सत्य न आता पास, जहाँ यश लोभ काम का वास :
पूर्ण नहीं वह स्त्रीमें जिसको होती पत्नी भास !
अथवा वह जो किञ्चित् भी सञ्चित रखता निज पास ;
वह भी पार नहीं कर पाता है मायाका द्वार
क्रोध ग्रस्त जो : अत: छोड़कर निखिल वासना-भार
गाओ धीर वीर सन्यासी ! गूंज मंत्रोच्चार,—

ओम् तत्सत् ओम्

मत जोड़ो गृह द्वार ! समा तुम सको कहाँ आवास ?
दूर्वादल हो तल्प तुम्हारा, गृहवितान आकाश !
खाद्य—स्वत: जो प्राप्त, पक्व वा इतर, न देओ ध्यान,
खान-पानसे कलुषित होती आत्मा वह न महान
जो प्रबुद्ध हो : तुम प्रवाहिनी स्रोतस्विनी समान
रहो मुक्त निर्द्वन्द्व, वीर सन्यासी, गाओ गान,

ओम् तत्सत् ओम्

विरले ही तत्वज्ञ ! करेंगे शेष अखिल उपहास,
गर्हा भी नर-श्रेष्ठ !—ध्यान मत दो; निबंध, अयास
यत्र तत्र निर्भय विचरो तुम, खोलो माया-पाश
अंधकार पीड़ित जीवों के; हो मत दुखसे भीत,
सुखकी भी मत चाह करो,—जाओ हे, रहो अतीत
द्वन्द्वोंसे सब : कहो वीर सन्यासी ! मंत्र पुनीत

ओम् तत्सत् ओम्

इस प्रकार दिन प्रतिदिन, जब तक कर्म शक्ति हो क्षीण,
बन्धनमुक्त करो आत्मा को : जन्म मरण फिर लीन :
फिर न रह गए मैं-तुम, ईश्वर-जीव या कि भवबन्ध,
मैं सबमें, सब मुझमें,—केवल मात्र परम आनन्द !
कहो 'तत्वमसि' सन्यासी ! उच्चारो मंत्र अमंद

१९३५]

ओम् तत्सत् ओम्

प्राचीन साहित्यकी समालोचना

जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। व्यष्टिके रूपमें इकाई होनेपर भी समष्टि रूपमें उसका जीवन समग्र समाजके साथ अविच्छेद्य रूपमें सम्बद्ध है। समाजका जैसा परिवेष्टन होगा उसके अनुसार ही उसके जीवन और उसकी विचारधाराओंका गठन होगा। समाजमें व्यक्तिकी जैसी परिस्थिति होती है, सामाजिक संस्कारोंके साथ उसके वैयक्तिक विचारोंका जो संघर्ष होता रहता है, आर्थिक वैषम्यके कारण समाजके अन्दर विभिन्न श्रेणियोंके बीच जीवन धारणके लिये जो संग्राम चलता रहता है इन सबका प्रभाव व्यक्तिके मनपर पड़े बिना नहीं रह सकता। समाजके साथ व्यक्तिका जो सम्बन्ध होता है उस सम्बन्धके प्रति वह सदा सचेतन बना रहता है और यह सचेतन मन ही उसके मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवनका गठन करता है और उसे प्रभावित करता रहता है। इस प्रकार मनुष्य अपनी सृजनी प्रतिभा द्वारा जो कुछ सृष्टि करता है उसमें उसके केवल मानसिक श्रमका ही नहीं शारीरिक श्रमका भी योग होता है। सामाजिक जगतमें उसकी जैसी भौतिक स्थिति होती है उसके अनुसार ही वह अपना मतवाद निश्चित करता है और अन्ततः उस मतवादकी प्रतिक्रिया उसके भौतिक जीवनपर भी पड़े विना नहीं रहती। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्यके भावों और विचारोंपर उसके भौतिक जीवनका और उसके विचारोंका भौतिक जीवनपर जो प्रभाव पड़ता है वह इतना स्पष्ट होता है कि उसकी हम कोई स्पष्ट रूपरेखा निश्चित कर सकें। चिन्तनके क्षणोंमें मनुष्य जब इस भौतिक धरातलसे ऊँचा उठ कर साहित्य, शिल्प, दर्शन एवं अध्यात्मके क्षेत्रोंमें विचरण करने लगता है उस समय उसकी प्रतिभा द्वारा जो सृष्टि होती है वह ऐसी नहीं होती कि उसपर हम उसके भौतिक जीवनका, समाजके साथ उसके आर्थिक सम्बन्धका, प्रत्यक्ष प्रभाव निरूपित कर सकें। उसकी कलात्मक कृतियोंपर उसके भौतिक जीवन तथा समाजके साथ उसके आर्थिक सम्बन्धका प्रभाव उनके निजके राजनीतिक विचारों द्वारा ही प्रतिफलित होता है। दूसरे शब्दोंमें हम इसे स्पष्ट रूपमें यों कह सकते हैं कि सामाजिक जीवन से सम्पूर्ण निरपेक्ष रहकर किसी कलाकारकी प्रतिभा साहित्य एवं शिल्पकी सृष्टि नहीं करती। अपने युगके ज्ञान विज्ञान तथा विभिन्न मतवादोंसे और उनके सम्बन्धमें अपनी निजकी धारणाओं एवं मान्यताओंसे प्रभावित होकर ही वह सृष्टि करने बैठता है और इन सबका प्रतिफलन उसकी कृतियोंपर पड़ता है। इस प्रकार कलाकारको उस

का जो विचारक रूप है उससे विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। और उसके इस विचारक रूपका सम्बन्ध उसके सामाजिक एवं भौतिक जीवनके साथ घनिष्ट रूपमें होता है। इस दृष्टिकोणको लेकर यदि हम प्राचीन साहित्यपर विचार करें तो हमें युग विशेष के सामाजिक इतिहासका अध्ययन करनेमें उस युगके साहित्यसे बहुत कुछ सामग्री प्राप्त हो सकती है और समालोचनाकी इस नूतन पद्धति द्वारा युग विशेषके साहित्य का यथार्थ मूल्याङ्कन भी हो सकता है।

मार्क्सवादी समालोचना पद्धतिमें इस दृष्टिसे ही प्राचीन साहित्यके अनुशीलनपर ज़ोर दिया जाता है। प्राचीन साहित्यका विशेषकर युग विशेषके वास्तववादी साहित्यका यदि इस रूपमें अनुशीलन किया जाय तो उससे हमें उस युगके इतिहासका—सामाजिक इतिहासका—जितना यथार्थ परिचय मिल सकता है उतना उस युगके ऐतिहासिकों और अन्य विषयोंके लेखकोंकी रचनाओंसे नहीं। यूरोपके सामाजिक इतिहासमें सामन्त समाजके ध्वंसावशेषपर धनिक समाजकी किस प्रकार प्रतिष्ठा हुई, उसके गठनमें कौनसे नियम-क़ानून काम कर रहे थे यह सब दिखानेके लिये मार्क्सने प्राचीन साहित्यसे अनेक दृष्टान्त लिये हैं। मार्क्सने इन दृष्टान्तोंको वैज्ञानिक तथ्योंके रूपमें ग्रहण किया है। अठारहवीं शताब्दीके वास्तववादी अंगरेज़ी उपन्यासोंके सम्बन्धमें मार्क्सने लिखा है : "इन, अंग्रेज उपन्यासकारोंने अपनी रचनाओंमें तत्कालीन समाजक जैसा साङ्गोपाङ्ग एवं सजीव चित्रण किया है और उससे उस युगके राजनीतिक एवं सामाजिक तथ्योंपर जैसा ज्वलन्त प्रकाश पड़ता है वैसा उस युगकी अन्यान्य समस्त रचनाओं द्वारा नहीं पड़ता।" धनिक समाजके विभिन्न स्तरोंका किस प्रकार क्रमविकास हुआ, उस युगके मनुष्यकी क्या विशेषताएँ थीं, उसकी धारणाओं एवं भावनाओंमें किस प्रकार परिवर्तन होते रहते थे, इन सब बातोंको जाननेके लिये इन अंग्ररेज़ी उपन्यासोंमें जो तथ्य मिलते हैं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। वास्तववादी उपन्यास और नाटकोंमें पात्रोंके चरित-चित्रण जिस रूपमें होते हैं उससे सामाजिक दशाओंके अध्ययनमें विशेष सहायता मिलती है। ये पात्र समाजके ही साधारण स्त्री-पुरुष होते हैं। इनके चरित-चित्रणमें समाजकी तत्कालीन दशाओं, उसकी धारणाओं एवं मान्यताओं का ही चित्रण होता है। विशेषकर नाट्यसाहित्यमें सामाजिक संघर्षका जैसा चित्रण होत है वैसा अन्यत्र नहीं। सामाजिक जीवनमें जब नूतन और पुरातनके बीच उनके। विचारों और सिद्धान्तोंको लेकर संघर्ष अनिवार्य हो उठता है उस समय नाटकोंकी सृष्टि होती है। नाट्यसाहित्यमें पात्रोंके चरित-चित्रणमें उनके अन्तर्द्वन्द्व एवं बाह्यद्वन्द्व दिखलाये जाते हैं। वे द्वन्द्व इस बातके परिचायक होते हैं कि समाजके अन्दर परस्पर विरोधी सिद्धान्तोंको लेकर किस प्रकार संघर्ष आरम्भ होता है और इस संघर्षका कारण होता है समाजका गठन और उसके विभिन्न वर्गोंके बीच आर्थिक वैषम्य। सामाजिक दशाका सजीव एवं ज्वलन्त चित्रण नाट्य साहित्यमें होता है और यही कारण है कि नाटकोंका प्रभाव सर्वसाधारण जनताके मन पर जितना पड़ता है उतना

साहित्यके किसी दूसरे अंगका नहीं । मार्क्सने अपनी 'कैपिटल' पुस्तमें शेक्सपियरके नाटकोंसे अनेक उद्धरण लिए हैं। उसने दिखाया है कि शेक्सपियरके युगमें अंगरेज़ी समाज के अन्दर जो संघर्ष चल रहा था, जिस संघर्षके कारण समाज छिन्न-भिन्न हो रहा था और उसकी पुरानी नींव हिल रही थी, उसीकी अभिव्यक्ति उसके नाटकोंमें हुई है। इसी प्रकार मार्क्सने अंग्रेरेज़ उपन्यासकार डिकेन्स और थैकरे तथा फ्रांसीसी उपन्यासकार बालज़ाकसे उद्धरण देकर दिखाया है कि इन औपन्यासिकोंके युगमें समाजके अन्दर कौनसी धनोत्पदाक शक्तियाँ काम कर रहीं थीं और समाजके विभिन्न वर्गोंके बीच किस प्रकारका आर्थिक सम्बन्ध था।

समालोचनाकी इस नूतन पद्धतिपर हमारे प्राचीन साहित्यका अनुशीलन अभी तक बहुत कम हुआ है। हिन्दीका प्राचीन सहित्य बहुत समृद्ध है। इस साहित्यको लेकर अबतक जो आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ हुई हैं उनमें विशेष रूपसे भाव-चमत्कार, शब्द-विन्यास, अर्थगाम्भीर्य्य, रसपरिपाक, अलंकार-योजना, आदि काव्यगत गुणोंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की गयी है। विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे इस प्रकार की समालोचनाका जो मूल्य है उसे कोई अस्वीकार नहीं करता। किन्तु सामाजिक इतिहास के वियार्थी यदि साहित्यका अध्ययन सामाजिक दृष्टिकोण लेकर करना चाहें तो उन्हें इस प्रकारके समालोचनासे कोई सहायता नहीं मिलती। वे तो यह जानना चाहते हैं कि युगविशेषमें कौनसी ऐसी सामाजिक शक्तियाँ काम कर रही थीं जिनसे प्रभावित होकर उस युगके साहित्यिक साहित्य-रचनामें प्रवृत्त हुए थे। उस युगमें विभिन्न विचारों एवं सिद्धान्तोंके बीच जो संघर्ष चल रहा था उसकी प्रतिक्रिया साहित्यिकके मनपर किस रूपमें पड़ी थी। इस दृष्टिसे यदि साहित्यकी समालोचना की जाय तो उससे सामाजिक अवस्थाके गठनका इतिहास जाननेमें साहित्यसे अनेक उपयोगी तथ्य प्राप्त हो सकते हैं और उनकी प्रामाणिकता अन्यान्य साधनोंसे प्राप्त 'तथ्योंकी अपेक्षा अवश्य ही अधिक होगी।

हिन्दीके रीतिकालीन साहित्यको ही ले लीजिये। अब तक इस साहित्यकी जो समालोचनाएँ हुई हैं उनसे हमें दो प्रकारके मनोभावोंका पता चलता है। समालोचकों का एक दल ऐसा है जिसने प्राचीन लक्षण-ग्रन्थोंके सिद्धान्तोंकी कसौटीपर रीतिकाल के साहित्यके गुण-दोषोंकी परीक्षा-समीक्षा की है। रस, अलंकार, शब्दयोजना, ओज, प्रसाद, माधुर्य्य आदि गुणोंकी दृष्टिसे रीतिकाव्यका मूल्याङ्कन किया है। दूसरे दलने इस साहित्यको अश्लील, अवास्तव एवं कल्पनाविलासी बताकर इसकी अवहेलना की है। रीतिकालके कवियोंने नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, कामोद्दीपनके रूपमें प्रकृति वर्णन करने अथवा अर्थचमत्कार एवं सरस शब्दविन्यास दिखलानेका जो प्रयास किया है, उससे केवल यह कहकर उनके काव्योंकी अवहेलना कर देना कि वे सबके सब कामुक एवं कल्पनाविलासी थे और वास्तव जगतके साथ, सामाजिक जीवनकी समस्याओं

के साथ उनकी रचनाओंका कोई सम्बन्ध नहीं था, समालोचनाका प्रकृत उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। इसी प्रकार लक्षणग्रन्थोंके सिद्धान्तोंके आधारपर काव्यकी समीक्षा करनेसे थोड़ेसे विदग्ध रसिक पाठकोंका भले ही मनोरंजन एवं आनन्दवर्द्धन हो जाय, किन्तु साधारण पाठकोंका उससे बहुत कम मनोरंजन एवं ज्ञानवर्द्धन हो सकता है। और इस दृष्टिसे इस प्रकारके काव्योंका मूल्य एवं महत्व बहुत कम हो जाता है और एक श्रेणीके रसज्ञ पाठकों तक ही उनकी मर्यादा रह जाती है।

इसलिये आजके इस नूतन युगमें जब हम एक नूतन दृष्टिकोण लेकर समाज और उसकी विचारपरम्परा, उसके संस्कार तथा उसकी धारणाओं एवं मान्यताओं की आलोचना करने लगे हैं, क्या यह आवश्यक नहीं है कि प्राचीन साहित्य एवं शिल्पकी समालोचना भी उसी दृष्टिसे की जाय और उसमें हमारे सामाजिक इतिहासके जो उपादान भरे पड़े हैं उनपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की जाय? हिन्दीका रीतिकालीन साहित्य हमारे स्थूल जीवनको लेकर रचा गया था, इसीलिये वह इतना मांसल है। वह जीवनके रससे सराबोर है। भले ही यह जीवन एक श्रेणी विशेषके जीवनसे सम्बन्ध रखता हो। इसी जीवनकी अभिव्यक्ति इस साहित्यमें हुई है। किन्तु रीतिकालके कवियोंने श्रेणी विशेषके जीवनको ही अपनी रचनाओंमें स्थान क्यों दिया और उस समयकी किन विचारधाराओंने उन्हें प्रभावित किया और उनकी कृतियोंसे तत्का-लीन सामाजिक अवस्थाका परिचय किस रूपमें मिलता है, इन सब प्रश्नोंपर ध्यान रखकर इस साहित्यका अनुशीलन होना आवश्यक है। समालोचनाकी यह पद्धति रीतिकालीन साहित्यपर अभिनव रूपमें प्रकाश डालेगी और उसका मूल्याङ्कन हम अबतक जिस रूपमें करते आ रहे हैं उससे एक नूतन रूपमें करने लग जाएँगे।

गायका घी

परिमल गोस्वामी

कलकत्तेकी साहित्य-गोष्ठीके साप्ताहिक अधिवेशनमें आज साहित्यके आदर्शपर बहस होगी।

बैठक शाम सात बजे शुरू होगी, कवि सुहृद् भट्टाचार्यके बैठकखानेमें। शहरके अनेक नवीन, प्रवीण साहित्यिक अपना-अपना मतामत व्यक्त करेंगे।

शाम छः बजेसे ही साहित्यिकोंने आना शुरू कर दिया है। सभापति हैं लोकप्रिय कहानी-लेखक सत्येन तालुकदार। उन्होंने कहा है कि वे ठीक सात बजे आयेंगे।

लेकिन इसी बीच तर्क शुरू हो गया। धीरे-धीरे आलोचना काफ़ी जम गयी है। सौन्दर्यके पुजारी द्विजू सेन साहित्यके आदर्शके सम्बन्धमें अपना मत सभा शुरू

होने तक न रोक पाये। दुर्भाग्यसे उनके पास ही बैठे हुए थे उनके विरोधी ललित दत्त। सहसा निम्नलिखित विवाद आरम्भ हो गया, सब कान लगाकर सुनने लगे।

ललित दत्त कहते हैं : महाशय, जिनके साहित्यमें मनुष्यका सुख-दुख, मनुष्यकी अशा-आकांक्षा प्रस्फुटित होगी वे ही बड़े लेखक होंगे, इस युगके बड़े लेखक।

द्विजू सेनने कहा : इस बातका कोई अर्थ नहीं निकलता। चाहे जो मनुष्य हो! उसका चरित्र यदि ठीक तरहसे अंकित हुआ है और उसकी कहानी यदि कहानी है, तो इतना ही काफ़ी है। और संसारमें केवल मनुष्य ही नहीं हैं, पशु-पक्षी और अखिल ब्रह्माण्ड भी है।

आलोचनाके ढंगने शिघ्र ही बहुत गम्भीर रूप धारण कर लिया। ललित दत्त चुप रहनेवाले जीव नहीं। उन्होंने कहा : कहानीमें मनुष्यके केवल व्यक्ति या केवल चरित्र रूपमें रहनेसे काम नहीं चलेगा, महाशय।

—क्या मतलब?

—मतलब यह, कि मनुष्य जिस समाजमें रहता है, उस समाजका रूप भी तो उसके पीछे होना चाहिये। नहीं तो वह परियोंकी कहानी होकर रह जायगी। इसके अलावा, धनिकोंका जो आदर्श है, उनको जो अच्छा लगता है, कहानीमें वे जिस उपभोग-वस्तु की माँग करते हैं, अब तक हम उसे ही विशुद्ध सौन्दर्य कहते आये हैं।

द्विजू सेनने विद्रूपकी हँसी हँसते हुए कहा—अर्थात् कम्युनिज़्म न होनेसे वह साहित्य न होगा? प्रोपेगैंडा न होनेसे वह साहित्य न होगा?

सुहृद् बाबूने विपत्तिकी आशंकासे विचलित होते हुए कहा—आप लोग ज़रा ठहरिये, यह सब आलोचना बादमें होगी।

लेकिन उनकी बातका कोई असर न हुआ। दोनों जनोंका गला और भी चढ़ गया। ललित बाबूने कहा : साहित्यमें दुखी मनुष्यकी दुःख-वेदना की कहानी चित्रित होनेसे ही क्या आप उसको प्रोपेगैंडा कहने लग जायेंगे?

—महाराज, मनुष्यका दुःख चिरस्थायी नहीं है, लेकिन मनुष्यके मनमें सुन्दरका जो स्वप्न है वह चिरस्थायी है। आज दुर्भिक्षके कारण फूल-सम्बन्धी काव्य चाहे अच्छा न लगे, लेकिन दुर्भिक्ष ख़तम होनेपर अच्छा लगेगा। तब भी क्या आप उस काव्यको कुकाव्य कहेंगे?

सुहृद्बाबूने इसी बीच चाय मेज दी है। उनको उम्मीद थी कि बहस थोड़ी देरके लिये बन्द हो जायगी। लेकिन चाय भेजनेसे भी कुछ हुआ नहीं। चाय पीते-पीते ही ललित बाबू कहने लगे—अर्थात् मनुष्यके जीवनके सुख-दुखको सामयिक कहकर उड़ा देनेसे ही आपने समझ लिया कि साहित्यके उद्देश्य उड़ गये? महाशय, जिस लेखकने आजके मनुष्यकी विराट दुःख-वेदनाको झंकृत नहीं किया, जिसने दुखी मनुष्यका आह्वान करके उससे यह नहीं कहा कि मैं तुम्हारा कवि हूँ, जिसने आँख मूँदकर वस्तुस्थितिसे पृथक् ऐब्सट्रैक्ट नीतिकी सहायतासे लेबोरेटरीमें बैठकर और यथार्थ

जीवनको निष्कासित करके अपने मनमें यह समझ लिया कि मैं अपर सौन्दर्यकी सृष्टि कर रहा हूँ, उसके साहित्यको किसी सुख-दुःखातीत दिनके लिये बक्समें बन्द करके रखना ही अच्छा है।

इस बातसे द्विजू सेन और भी उत्तेजित हो उठे, बोले—बड़ी वाहियात बात कर रहे हैं आप! आपकी बातका तो यही मतलब है कि हमें आलू, परवल और धानमें ही आनन्द खोजना है। आपके विचारसे तो प्रकृति फूल उगाकर बहुत भूल कर रही होगी!

ललित दत्तने कहा: अन्ध प्रकृतिके साथ चिन्तनशील मनुष्यकी उपमा देकर आपने अद्भुत तर्क उपस्थित किया है। प्रकृति क्यों फूल उगाती है और क्यों साँप पैदा करती है, यह तो मैं नहीं जानता—

सुहृद् बाबूने बात काटते हुए हाथ जोड़कर कहा—पनाह माँगता हूँ आप लोगों से, ज़रा थमिये भी तो!

ललित दत्तने कहा: थमें क्या महाशय, देखते नहीं यह सज्जन क्या अंड-बंड बक रहे हैं! वह कहते हैं, मनको निष्क्रिय भावसे आँख खोलकर प्रकृतिकी शोभा देखनी चाहिये और जिन मनुष्योंके बीच वह वास कर रहा है, उनकी बात साहित्यमें उठते ही उसे कहना चाहिये, यह साहित्यका विषय नहीं है। अर्थात् मनुष्यके लिये समवेदना प्रकाशित करनेका इजारा अकेले सोवियत रूसके हाथमें है। इस देशमें वह चीज़ चल नहीं सकती।

द्विजू सेनने उत्तेजनासे काँपते हुए कहा—बस, अब बहससे कोई फ़ायदा नहीं। आपने मान लिया कि आपका साहित्य रूसकी नक़ल है।

ललित दत्तने इस बातको अनसुना करते हुए कहा: ऐसे स्थविर लोगोंसे सचमुच बहस करना बेकार है जिन्हें यही नहीं मालूम कि अब लोगोंका सोचनेका ढंग बदल गया है।

—इसका मतलब यह कि चिरन्तन कुछ भी नहीं!

—है क्यों नहीं। लेकिन वह क्या है, यह ज़ोर देकर नहीं कहा जा सकता। चिरन्तन यदि कुछ है तो वह साहित्यका उद्देश्य। लेकिन साहित्यकी भाषा, साहित्यकी दृष्टि-भंगी, साहित्यकी विषय-वस्तु बार-बार बदलेगी। साहित्यका जो उद्देश्य है, साहित्य युग-युगसे उसीको पूरा करता आ रहा है। इसलिये द्विजू सेनके साथ मेरा मतभेद मिटा नहीं।

द्विजूने हँसकर बात को उड़ादेनेकी कोशिश की और हँसी रुकनेपर कहा: यह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है।

ललित बाबूने भी हँसकर कहा: एक बात मनमें रखियेगा, द्विजू बाबू, इस वक्त हम साहित्यमें अपनी नवचेतना और नवउपलब्धिका चित्रण देखना चाहते हैं।

किसकी नवचेतना? —कहकर द्विजू सेनने इस तरह हाथ हिलाया कि सामनेकी ट्रेमें से कई प्याले धक्के खाकर गिरे और झनझन करते टूट गये। प्याले टूटनेका यही शब्द मानों नाटकके एक अंककी समाप्तिके घंटेके रूपमें बजा।

इसी समय प्रौढ़ कवि, अघोर सरकारने एक बड़ा भारी टीन हाथमें लिये ओसारेमें प्रवेश किया। सबकी दृष्टि उनपर गयी।

कहानी लेखक त्रिदिव चक्रवर्तीने कहा : अरे अघोरदा, आइये! और वह आपके हाथमें क्या है ?

अघोर बाबूने गम्भीर भावसे कहा : साहित्य नहीं।

द्विजू सेनने विकृत स्वरमें कहा : कहा नहीं जा सकता, क्योंकि साहित्यके आदर्श आजकल टीनमें बन्द होकर विदेशसे आ रहे हैं।

ललित दत्तने साथ ही साथ जवाब दिया : वह तो माइकेल मधुसूदनके समयसे चला आ रहा है और वह आदर्श नहीं, दृष्टि-बिन्दु है।

सुहृद् बाबूको फिर विपत्तिकी आशंका हुई।

औपन्यासिक शशांक शेखर पहलेसे ही टीनकी ओर कौतूहली दृष्टिसे देख रहे थे। उन्होंने पूछा : कहिए न दादा, यह साहित्य-सभामें टीन कैसे आया ?

अघोर बाबूने कहा : कोई ख़ास चीज़ नहीं। यही पाँचेक सेर सरसोंका तेल।

सबने विस्मित होकर प्रश्न किया : सरसोंका तेल ? कहाँ मिला ?

—बड़ी मुशकिलसे मिला। पच्छिमसे एक मित्र आये हैं। हवड़ा स्टेशनसे लिये चला आ रहा हूँ।

शशांक शेखरने कहा : आप बड़े भाग्यवान् हैं।

कवि त्रिदिव चक्रवर्तीकी आँखोंमें आधुनिक बाज़ारकी पूरी काली तसवीर पल भरके लिये झलक उठी। लम्बी साँस छोड़ते हुए उन्होंने कहा : अगर ख़ाली तेलकी बात होती तो कोई बात न थी। बाज़ारमें मछली नहीं, घी नहीं, दूध नहीं, कुछ नहीं।

ललित दत्तने विरक्त भावसे कहा : अरे कोई हद भी है ? आज रोहू मछली तीन रुपया सेर ख़रीदी।

विषय इतना चित्ताकर्षक था कि क्षण भरमें बाज़ारकी हवा साहित्य गोष्ठीमें चलने लगी।

द्विजू सेनने उत्तेजित भावसे कहा : अरे आप मछलीकी बात करते हैं! साग-भाजी, सभी चीज़ोंका दाम तो आगकी लपटों-सा बढ़ रहा है। अरे कोई चीज़ है जो मनके मुताबिक़ मिले और मनके मुताबिक़ ख़रीदी जा सके ?

ललित दत्तने कहा, साग, भाजी डंठल वग़ैरह मिल भी जायँ तो आप खायेंगे कैसे ? तेल कहाँ है ?

शशांक शेखरने कहा : गाय-बैलकी तरह, धो खाते; यों मिले तो।

अघोर बाबूने व्यथित स्वरमें कहा : ऐसी दुरवस्था है कि करेला घीमें तलना पड़ रहा है!

द्विजू सेनने कहा : आपको करेला तलनेके लिये घी तो मिल जाता है। हमको तो वह भी नहीं मिलता।

—वह तो यहाँ थोड़े ही न मिला ! देशसे एक जन मन भर घी लाये थे, आज उन्हींसे थोड़ासा खरीद लिया है।

त्रिदिव बाबू बोले : अघोरदा हमेशासे ही बड़े जोड़-तोड़ वाले आदमी रहे हैं। देखते नहीं—कहींसे घी, कहीं से तेल, सब मजेमें जमा कर कर रहे हैं।

ललित बाबूने अघोर बाबूकी तरफ़ करुण दृष्टिसे देखते हुए कहा : मेरे लिये कहींसे कुछ इन्तज़ाम न कर देंगे ? कै रुपये सेर ?

—चार रुपये। शुद्ध गायका घी।

साहित्य गोष्ठीमें साहित्यकी बातचीतसे कोई इतना विचलित न होता। सबके मुँहसे विस्मय-सूचक उद्‌गार निकल पड़े—चार रुपये ? शुद्ध गायका घी ?

कवि, कहानी-लेखक, औपन्यासिक, सबने एक स्वरसे कहा : न बाबा, यह घी कभी हाथ से न जाने देना चाहिये !

अघोर बाबूने विरक्त भावसे कहा—देखता हूँ, बड़ी मुसीबतमें फँसा दिया आप लोगों ने। अब और आगेकी बात कहनी होगी। घी तो सब कल ही बिक्री हो गया।

—सर्वनाश ! चलिये अभी चला जाय—

—साहित्य गोष्ठी ?

—और किसी दिन होगी।

—साहित्य का आदर्श ?

—भाड़में जाय।

सब मिलकर अघोर बाबूको बाहर घसीट ले गये।

सभापति सत्येन तालुकदारकी आज कठिन परीक्षा है। दो विभिन्न दलोंका मन रखना होगा उनको, और इतना ही नहीं, अपना मत भी व्यक्त करना होगा। वे गम्भीर चिन्तामें निमग्न सभामें आये तो सभाको शून्य पाकर स्तम्भित हो गये ! तारीख़के मामलेमें मुझे धोखा हो गया क्या ? नौकर था, उसने कहा : सभी बाबू आये थे।

—लेकिन गये कहाँ ?

—घी खरीदने।

—ऍं ?

—जी हाँ, अघोर बाबूने कहा कि वे उनको चार रुपये सेरके भावसे गायका घी दिला देंगे, इसीलिये सब उठकर उनके साथ चले गये हैं।

—कब गये ?

—अभी तो। मुशकिल से पाँच मिनट हुआ होगा।

—गायका घी ! ठीकसे सुना था न ?

—वही तो कहा उन्होंने।

—किधर गये हैं ?

—उधर ट्राम लाइनकी ओर।

नौकर सत्येन तालुकदारकी चकित और विलीन होती हुई मूर्तिको थोड़ी देर देखता रहा, फिर रोशनी बुझाकर उसने धीरे-धीरे दरवाजा बन्दकर दिया।

पानी बरसा !

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

ओ पिया, पानी बरसा !
ओ पिया, पानी बरसा !

घास हरी हुलसानी
मानिकके झूमर-सी
झूमी मधुमालती;
झर पड़े जीते पीत अमलतास
चातकीकी वेदना बिरानी ।

बादलोंका हाशिया है आसपास—
बीच लिखी पाँत काली बिजलीकी
कुंजोंकी डार, कि—
असाढ़की निशानी !
—ओ पिया, पानी !
मेरा जिया हरसा :
ओ पिया, पानी बरसा !

खड़खड़ कर उठे पात
फड़क उठे गात ।
देखनेको आँखें,
घेरनेको बाँहें,
ओठको ओठ, वक्षको वक्ष—
पुरानी कहानी ?
ओ पिया, पानी !—
मेरा हिया तरसा !
ओ पिया, पानी बरसा !

समाज और नृत्य

शान्ता गान्धी

कुछ शब्द-समूह हैं, जो श्रुति-मधुर तो बहुत होते हैं, और कवित्वपूर्ण भी होते हैं, पर कसौटीके सामने नहीं ठहरते। उदाहरणार्थ, 'कला, कलाके लिये' को लीजिये। सभी कलाकार ये शब्द सुनते हैं, कुछ इनपर विश्वास भी कर लेते हैं, और कुछ इनके प्रवाहमें बह भी जाते हैं।

पर, इस विषयपर विवाद आज तक समाप्त नहीं हुआ, और यहाँ नृत्यकलाके सम्बन्धमें भी इसपर दृष्टिपात करना सम्भवतः अप्रासंगिक न होगा।

जन-नाट्य-संघका केन्द्रीय-दल, हालमें, अहमदाबाद गया था। वहाँ कुछ लोगोंने उसके नृत्यकी आलोचना करते हुए कहा कि वे शास्त्रीय अधिक हैं। उन्होंने हमारे नृत्योंके कला-पक्षकी प्रशंसा की और कहा कि वे पार्टियोंके प्रचारसे मुक्त हैं—उनका मतलब था, हर प्रकारके प्रचारसे। प्रश्न यह उठता है कि ऐसी तथा-कथित 'शुद्ध' नृत्य-कला क्या सम्भव है? क्या इससे पहले भी कभी ऐसी नृत्य-कलाका कहीं अस्तित्व रहा है?

कला, कलाके लिये तो नहीं रही। और वास्तवमें, अगर वह हमारे जीवनका प्रतिबिम्ब है, तो 'सिर्फ़ कलाके लिये' तो हो ही नहीं सकती! जिस कलाकी धमनियोंमें मानव जीवनके अनुभवों और आकांक्षाओंका रक्त प्रवाहित नहीं होता, वह जीवनके उत्थान-पतन आघात-प्रतिघातमें जीवित भी नहीं रह सकती। भारतवर्ष जैसी सम्पन्न और विराट सांस्कृतिक परम्पराका निर्माण केवल उस परम्परासे परिचित यथार्थवादी कला-पारखी ही कर सकते हैं, और कोई नहीं।

हमारे इतिहासमें, कला—और विशेष रूपसे नाटक जैसी कला—ने हमारे समाजके निर्माणमें बहुत बड़ा भाग लिया है। अतएव वह समाजके विभिन्न वर्गोंके भौतिक हितों और विचारधाराओंसे अछूती नहीं रह सकी। जिस वर्गके हाथमें राज-सत्ता होती थी, वह वर्ग अपने हितों और आदर्शके लिये इस अचूक अस्त्रका प्रयोग करता था।

नाट्य-शास्त्रके सूक्ष्म अध्ययनसे भी हम इसी परिणामपर पहुँचेंगे। नाट्य-शास्त्र नाटक और नृत्य सम्बन्धी सबसे पुराना शास्त्र है। नाट्य कला किस तरह पैदा हुई, इसका उसमें परम्परागत विवरण है। और यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि हर एक परम्परा, इतिहासकी किसी विशेष अवस्थामें, हमारे समाजकी तत्कालीन आवश्यकतासे उत्पन्न होती है।

यह पुस्तक कब लिखी गयी, यह निश्चित करना तनिक कठिन है, क्योंकि इस पुस्तकके विभिन्न पद्योंकी रचना भिन्न-भिन्न कालोंमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा हुई। यों

उसके लेखक भरत माने जाते हैं, जो सम्भवतः उसके प्रधान लेखक रहे होंगे। यह ग्रन्थ कितना महत्वपूर्ण है, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है, कि इसको पाँचवाँ वेद, नाट्य-वेद, कहा जाता था। मैं नीचे उसके प्रथम परिच्छेदके ८-१२ तकके श्लोकों का अनुवाद दे रही हूँ। इन श्लोकोंमें भरत मुनिने अत्रि ऋषि तथा उनके साथी ऋषियोंको बताया है कि उन्होंने इन कलाओंका ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया:

"बहुत दिनों पहले, जब स्वयम्भू मनुके अनन्तर वैवस्वत मनुके कालमें त्रेता युग प्रारम्भ हो रहा था, जनतामें ग्राम-धर्म उदय हुआ। वह काम और लोभके वशीभूत हो गयी, और संसारके सभी सुखी मनुष्य ईर्ष्या और क्रोधसे अन्धे हो गये। लोकपालोंके जम्बूद्वीपपर देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसों और नागोंने आक्रमण कर दिया।

"तब महेन्द्रके नेतृत्वमें देवोंने ब्रह्मासे कहा कि 'हम ऐसा खेल चाहते हैं, जिसे देखा भी जा सके और सुना भी। वेदोंके व्यवहार करनेका अधिकार शूद्रोंको नहीं है, इसलिये एक ऐसा पाँचवाँ वेद बनाइये जिसे सब वर्णोंके लोग व्यवहारमें ला सकें।"[1]

यह सम्भवतः हमारे देशका वह युग था जब कृषिके साधन उत्पन्न ही हुए थे, और समाजमें वर्ग-भेद पैदा हो गया था। भिन्न-भिन्न जातियाँ जमीनपर अधिकार करके ग्राम सभ्यताका निर्माण कर रही थीं। किन्तु किसी जातिको फ़ौजी शक्ति द्वारा जीता तो जा सकता है, पर उसके द्वारा न तो उसपर शासन किया जा सकता है, और न उससे अपने लिये काम करवाया जा सकता है। इसके लिये शासकको शासित जातिका विश्वास और आदर प्राप्त करना पड़ता है। इसके अलावा शासककी हैसियतसे काम करनेके लिये अपने कार्यकर्त्ताओंको ट्रेनिंग भी देना पड़ती है और उनमें आत्मविश्वास भी पैदा करना पड़ता है। ऐसे समय प्रभावात्मक प्रचारकी आवश्यकता अनुभव होती है। यह आवश्यकता गाँवकी राजनीतिमें और भी अधिक अनुभव होती है। प्रचारके लिये साधन ऐसे ढूँढ़ने होते हैं, कि जिनके द्वारा शासकोंका गुण-गान किया जा सके, और

---

१. पूर्वं कृतयुगे विप्राः वृत्ते स्वायम्भुवेऽन्तरे।
त्रेतायुगेऽथ सम्प्राते मनोर्वैवस्वतस्य च॥
ग्राम्यधर्मप्रवृत्ते तु कामलोभवशं गते।
ईर्ष्याक्रोधाभिसंमूढे लोके सुखित दुःखिते॥
देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षौमहोरगैः।
जम्बूद्वीपे समाक्रान्ते लोकपाल प्रतिष्ठिते॥
महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः
क्रीड़नीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥

—नाट्यशास्त्रम्, १। ८-१२

उनके वैभवकी ऐसी झाँकी अंकित की जा सके कि शासित समुदायकी आँखें चकाचौंध हो जायँ। और यह साधन आविष्कृत किया गया शासित वर्गकी पुरानी परम्पराओंमें से।

"भरतने ऋगवेदसे शब्द लिये, यजुर्वेदसे अभिनय; सामवेदसे संगीत, अथर्वेदसे रस और ललित कलात्मक नाट्यवेदका निर्माण किया।"[1]

भरत मुनिने अपने सैकड़ों शिष्योंको नाट्य कला सिखायी और देवोंकी विजयके उत्सवके दिन पहली बार अभिनय उपस्थित किया। विषय था कि किस प्रकार देव जाति ने दैत्य जातिपर विजय प्राप्त की। देव बहादुर योद्धाके रूपमें चित्रित किये गये थे और दैत्य कायरोंके रूपमें, जो जान बचाकर भाग निकलते थे। इससे देव बड़े प्रसन्न हुए, और वे भरत मुनिकी नाट्य मंडलीके प्रधान संरक्षक हो गये। उन्होंने उसके लिये एक रंगमंच भी बना दिया। अन्य गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि तटस्थ जातियोंने भी इस मंडलीका समर्थन किया। किन्तु दैत्योंके आत्मसम्मानको इस मंडलीसे धक्का पहुँचता था। इसलिये उनका क्रुद्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। कुछ अन्य असुर जातियाँ थीं, जिनको देवोंका बलशाली हो जाना नहीं सुहाता था। अतएव उन्होंने भी इस नये आविष्कारमें अपने लिये खतरेका संकेत देखा। उन्होंने दैत्योंका साथ दिया और विरुपाक्षके नेतृत्वमें विघ्न उपस्थित करनेका निश्चय किया।[2]

इस नीतिके अनुसार उन्होंने इस नाट्य मंडलीपर आक्रमण करना प्रारम्भ कर-दिया। परिणामतः एक युद्ध छिड़ गया। संरक्षकोंने अपने कलाकारोंकी रक्षा की।

किन्तु मामला जल्दी शान्त नहीं हुआ। इन बाधा डालनेवाले 'विघ्नगणों' ने अपना विरोध जारी रखा, बड़ी बड़ी कार्रवाइयाँ कीं और मंडलीके काममें बाधा डाली। किन्तु यह कब तक सहन किया जाता? भरतने ब्रह्मासे प्रार्थना की कि वे इसका उपाय करें। ब्रह्माने इस समस्याको हल करनेके लिये विश्वकर्माको एक नाट्यशाला बनानेकी आज्ञा दी। मंचके हर अंगकी रक्षाके लिये सैनिक-रक्षक नियुक्त किये गये। नायक और नायिकाका अभिनय करनेवाले महत्वपूर्ण अभिनेताओंकी रक्षाका भार सरस्वती जैसी प्रभावशालिनी देवीने लिया; शेष अभिनेताओंकी देखभाल करनेका भार शिवजीने लिया।

इस तरह हम देखते हैं कि नाट्यशालाओंके अन्दर नाटक खेलनेकी पद्धतिका विकास दैत्योंके विद्रोह और उनके आक्रमणोंके कारण हुआ। हमारे आजके थिएटरोंकी

---

१. जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणापि।
वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा ललितात्मकम्॥
—नाट्यशास्त्रम्, १।१७–१८

२. अभवन् सुमिता: सर्वे दैत्या ये तत्र संभता:।
विरूपाक्षपुरोगास्तु विघ्नान् प्रोत्साह्य तेऽब्रुवन्॥
—नाट्यशास्त्रम्, १।६६

पूर्वज यही नाट्यशालायें थीं। थिएटर हॉलके जन्मका यही इतिहास है। इसकी पूरी कथा नाट्यशास्त्रके ६६ से लगाकर ९८ तकके श्लोकोंमें वर्णित है।

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, हमारे पूर्वज पूर्ण रूपसे यथार्थवादी थे। उन्होंने स्पष्ट रूपसे देख और समझ लिया कि दीवारोंके अन्दर घेरकर रखनेसे यह पाँचवाँ वेद भी पुराने वेदोंकी तरह हो जायगा, और केवल अपने वर्ग विशेष तक ही सीमित रह जायगा। ऐसी अवस्थामें, उनका जो उद्देश्य है, वह कभी पूरा नहीं होगा—अर्थात् शासक और शासित वर्गमें शान्तिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित न हो सकेंगे। और ऐसे सम्बन्धोंकी स्थापना अत्यन्त आवश्यक थी, सुन्दर जौर सुव्यवस्थित रूपमें शासन चलानेके लिये। वे जानते थे :

"शत्रुपर विजय पानेके लिये पहले साम (समझा-बुझाकर समझौता) का प्रयोग किया जाना चाहिये। अगर उससे काम न चले तो दामका प्रयोग करना चाहिये, और उससे भी काम न चले तो भेद (शत्रुकी आपसी फूटकी बात) का प्रयोग करना चाहिये और जब इससे भी काम न चले तब दंडका प्रयोग करना चाहिये।"[1]

वे जनमतके सामने थोड़ा सा झुके। अपने प्रचारको उन्होंने ज़रा नर्म बनाया।

महान् कलाकार भरत परिस्थितियोंसे जल्दी सीख जाते थे। उन्होंने स्पष्ट देखा कि यदि इसी तरह चहारदीवारीके अन्दर नाट्यकला सीमित रही, तो उसके विकासका द्वार बन्द हो जायगा। वे ब्रह्माके पास गये और उनसे मध्यस्थ बननेकी प्रार्थना की।

ब्रह्माने दैत्योंको नाट्यकलाका महत्त्व समझाया, और उनके विरोधको शान्त करनेमें सफलता पायी (श्लोक १०१–११२)। उन्होंने दैत्योंको बताया कि नृत्य-नाट्योंका निर्माण उनका अपमान करनेके लिये नहीं किया गया; भविष्यमें देव और अदेव सभीके जीवन और उनके गुणों और अवगुणोंका चित्रण किया जायगा। इस नयी कलाका प्राथमिक उद्देश्य होगा सबका मनोरंजन करना, सबको आनन्दित करना, और शिक्षा देना।

यह सब स्वीकार करेंगे कि अच्छे प्रचारके लिये भी कलात्मक साधन आवश्यक होते हैं। नाट्यशास्त्रमें पात्रोंके चुनाव करने, उनको अभिनय-कला सिखाने आदिके विषयमें दिग्दर्शकोंके लिये जितने सूक्ष्मसे सूक्ष्म आदेश दिये गये हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि हमारे पूर्वज इस कलाके विकासके लिये कितनी गम्भीरता-पूर्वक कार्य करते थे। पर, यदि कलाकी आत्मा — विषय-वस्तु — ठोस और स्वस्थ नहीं है, तो उसका शरीर — अभिनय — का अस्तित्व रह कैसे सकता है?

---

१ एतान्यैवाधिदैवानि भविष्यन्तीत्युवा च सः।
एतास्मिन्नन्तरे देवैः सर्वेरुक्त; पितामहः॥
साम्ना तावादिमे विघ्नाः स्थाप्यन्तां वचसा त्वया।
पूर्वं साम प्रयोक्तव्यं द्वितीयं दानमेव च॥

—नाट्यशास्त्र, १।९९–१००

हमारा पुराना इतिहास अधिकांशतः कथाओंपर आधारित है। किन्तु इसमें भी आपको कलाके विकासके सिद्धान्तोंकी झाँकी मिलेगी। हम देख चुके हैं कि हमारे नृत्य-नाट्योंका जन्म एक राजनीतिक आवश्यकताकी पूर्ति करनेके लिये हुआ था। उसका संरक्षण बड़े-बड़े प्रभावशाली लोगोंने इसलिये किया कि वह प्रचारका बड़ा भारी साधन था। और वह नृत्य-नाटक आज तक इसलिये जीवित रहा कि उन्होंने समय-समयपर जनताकी —गरीब-अमीर सभी लोगोंकी— आशा-आकांक्षाओंको चित्रित करनेके लिये नित-नूतन विषय-वस्तु ग्रहण की। अपनी प्यारी कलाको जीवित रखनेके लिये महान कलाकारको ही काफ़ी संघर्ष करना पड़ता है। भरतने नाट्य कलाके सम्बन्धमें कहते हुए इस बात को यों व्यक्त किया है:

योऽयं स्वभावो लोकस्य, सुखदुःख समानितः।
सोऽङ्गाद्यमियोयेतो, नाट्यमित्यभिश्रीयते॥ [1]

---

१. शरीरकी भाव-भंगिमा द्वारा जनताके सुख-दुखको अंकित और प्रदर्शित करना नाटक है।

गंगा-लाभ

गंगा प्रसाद मिश्र

अब तो यह बस कहने-सुननेकी बात रह गयी है कि किसी समय गंगादेईक जन्म गंगाकी बड़ी मान माननेके बाद हुआ था। कहा जाता है कि गंगादेईके माता-पिता निपूते थे। एक संतानका मुख देखनेके लिये वे व्याकुल थे, सारे देवताओंकी पूजा-पातीका जब कोई प्रभाव न हुआ तो गंगाकी मानता मानी गयी और गंगाने दम्पत्तिकी अभिलाषा पूरी की। शक्करकी मेढ़ इस उपलक्षमें गंगाके किनारे बनवायी गयी, यथाशक्ति गंगापुत्रोंको भोजन करवाया गया और गंगामाईका प्रसाद जवार भरमें बाँटा गया।

गंगादेईने जन्मसे ही जैसे गंगाकी आराधनाको संस्कार-रूपमें ग्रहण किया। कोई ऐसा बड़ा तीज-त्यौहार न जाता जब वह अपने गाँवसे सुदूरस्थित गंगामें स्नानके लिये न जाती हो। गंगाने उसे दिया भी सब कुछ। हीरा ऐसा पति उसे मिला और

भीष्म ऐसा पुत्र जो माताके लाख कहने और रोने-धोने पर भी इस कारण विवाह न करता था कि उसकी पत्नी आकर उसकी वृद्धा माताकी सेवा और उनके परस्पर प्रेममें बाधक होगी। दुर्भाग्यसे उसके पतिका देहान्त वृद्धावस्थामें हो गया और अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें गंगादेईको वैधव्य दुख भोगना पड़ा, पर इस घटनाने उसकी धार्मिक प्रवृत्तिको और भी तीव्र कर दिया। अब उसकी एक ही साध थी, कि गंगाकी गोदमें प्रवाहित होकर अपने पतिसे जा मिले।

उसकी यह साध पूरी होनेमें बहुत दिन न लगे। उस दिन गंगादेई जैसे ही ब्रह्म मुहूर्तमें उठनेका प्रयत्न करने लगी तो उसे अपनी देह कुछ टूटती हुई सी मालूम हुई, रातमें कुछ नींद भी ठीक न आयी थी। एकदम उसके हृदयमें यह बात आयी कि अब अन्तिम समय आ गया। कुछ प्रसन्नता सी इस बातको सोचकर हुई, कुछ दुख भी हुआ—मेरा बेटा अब अकेला रह जायगा, उसके खाने-पीनेकी साज़-सँभाल कौन करेगा। ईश्वर सबको देखने सँभालने वाला है, यह सोचकर मनको समझाया। उठनेका एक बार फिर प्रयत्न किया, पर बढ़ती हुई कमज़ोरीने उसे विवश कर दिया। यही सोचते-विचारते दिन निकल आया, तब उसने आवाज़ दी—'केशव, बेटा केशव!'

केशव हड़बड़ाकर उठ बैठा। वह भी मुँह अँधेरेका उठने वाला था पर रातमें महावीरजीके मन्दिरपर भजन में रात बीत गयी थी, इसी कारण वह आज सुबह न उठ सका था। वर्ना इस वक्त तक तो वह सन्ध्या-पूजा समाप्त कर चुका होता था। आँखें मलता हुआ उठा तो देखा माँ अब तक पड़ी हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ उसे; इतनी उम्र हुई, माँको उसने कभी सवेरे उठनेपर बिस्तरेपर न पाया था। वह जब उठता तो उन्हें नहाये हुए, तुलसीचौरेपर पूजा करते हुए देखता था।

"क्यों, क्या बात है माँ?"—उसने पूछा।

"मेरा जी आज बहुत ख़राब मालूम होता है, बेटा," माँने उत्तर दिया।

माँकी आवाज़की कमज़ोरी केशवके आश्चर्यका कारण हुई। ऐसा क्या हो गया माँको, एक ही रातमें जो इतनी कमज़ोर मालूम हो रहीं हैं? जल्दीसे वह उनके पास जा पहुँचा, बदनपर हाथ रक्खा तो वह बुख़ारकी गर्मीसे जल रहा था। "तुम्हें तो बुख़ार है, माँ!"

"अभी थोड़ी देरसे चढ़ आया है, रातमें नींद भी कम पड़ी थी, सवेरे बदनमें कुछ दर्द मालूम हुआ और बुख़ार चढ़ आया।"

केशवके गाँवके वैद्य बड़े होशियार हैं; फौरन उनकी याद आई। "अभी वैद्य-जीको बुलाकर लाता हूँ, माँ।"

चलनेको तैयार होते हुए केशवका हाथ पकड़कर माँने कहा—"अब कोई ज़रूरत नहीं है बेटा, मेरा मन कहता है कि अब चलनेका समय आ पहुँचा।"

"कैसी बात कहती हो, माँ! ज़रासे बुख़ारमें इतना घबड़ा गई," कहता हुआ केशव घरसे बाहर निकल गया। फिर भी चिन्ता और शोक उसके मनमें पैठ गये। पड़ोसिन

काकीको पहले जाकर माँकी देखभाल करनेके लिये घर भेजा, तब स्वयं वैद्यजीके यहाँ दौड़ा ।

' जब केशव वैद्यजीको लेकर लौटा तो देखा कि माँकी दशा पहलेसे ज़्यादा बिगड़ गयी थी । बढ़ी हुई कमज़ोरीके कारण बेहोशी आ रही थी और उनकी आँखें बन्द होती जा रहीं थीं ।

वैद्यजीने भली भाँति परीक्षा करके दवा दी, और वह विधिवत् दी भी गयी, पर दशा सुधरनेके बदले बिगड़ती ही चली गयी । एक आदमी शहर डाक्टर लेने भेजा गया। सारा गाँव जुटा था, क्योंकि दोनों माँ-बेटे सदा सबके सुख-दुखमें खड़े होते थे । केशव तो पागल हुआ जा रहा था ।

सन्ध्या समय गंगादेईने आँखें खोलीं, केशव सामने ही खड़ा था; माँको आँखें खोलते देखकर वह उससे लिपटकर रोने लगा, "कैसा जी है माँ तुम्हारा ? "

माँ बड़ी मुश्किलसे कह सकी—" धीरज धरो बेटा, किसीके भी माँ-बाप जिन्दगी भर बैठे नहीं रहते; आज मेरा अन्तिम समय आ गया । अब मुझे करना भी क्या है, बेटा; तू मुझे गंगालाभ करा देना, फिर ब्याह करके सुखसे रहना, यही मेरी कामना है । अब मुझे रामायण पढ़कर सुनाओ ! "

केशव बिलखता रहा ।

डाक्टर और वैद्यके सब प्रयत्न माँको न रोक सके और सुबह होते-होते वे केशव को छोड़कर चल बसीं ।

टिकटी बना कर गाँववालोंने शवको गाँवके बाहर तक पहुँचाया, फिर वह बैलगाड़ीपर रख दिया गया । केशव गाड़ी लेकर चला, तो गाँवके बहुतसे लोग साथ चलनेको हुए पर केशव अब तक संयत हो चुका था। उसने सबको वापिस भेजा, क्योंकि पहला पानी हो चुका था और खेतोंकी जुताई हो रही थी । यह समय खोनेका न था । कहीं धूप निकल आती और खेत सूख जाते तो हल लगना कठिन हो जाता ।

× × ×

गाड़ीपर माँके शवको लेकर केशव चला तो उसके स्मृति-पटपर जीवनके पहले चित्र एक-एक करके आने लगे । न जाने कितनी बार वह इसी मार्गपर माँकी गोदमें बैठकर गंगा नहाने गया था। अनेक बार मेलों और पर्वोंपर झुंडके झुंड गाँवसे नहाने आते थे । वह उन दिनोंको कैसे भुला सकता था जब रास्तेके किनारे लगी हुई दुकानोंसे खिलौने खरीदनेको वह माँसे मचल जाया करता था । और माँ अपनी सारी पूँजी बेटेकी साध पूरी करनेमें लगाकर यह भूल जाया करती थी कि वह अपने अथवा घरके लिये किन चीजोंको ख़रीदनेके वास्ते पैसे लायी थी । कतकीके मेलेके वे दिन कैसे भुलाये जा सकते थे जब गाड़ियोंमें बैठी हुई स्त्रियाँ गाती हुई चलती थीः—

जतन बताय जैयो, कैसे दिन कटिहैं !

बच्चे शोर मचाते खेलते-खाते, पुरुष गन्ने चूसते और बिरहा गाते हुए—' गहरी कुइयाँ खुदाव मोरे राजा! ' रास्तेको अपनी मस्तीसे जैसे छोटा कर देते थे।

आज जब एकाकी वह अपनी माँके शवको लेकर जा रहा था, वे सुखद दिन एक-एक करके केशवकी आँखोंके सामने आ रहे थे। बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्थाके वे दृश्य जिन्हें वह आज तक बिल्कुल भूला हुआ था, सब उसकी आँखोंके सामने नाच रहे थे। न जाने कितनी बार बैल खेतोंमें फँसे होनेके कारण माँ पैदल ही आयी थी और अपने लाल, केशवको गोदमें लिये हुये ही उसने इतना लम्बा रास्ता तय किया था। फिरसे उसे वह दिन याद आया जब वह युवा हो गया था और रास्तेमें चलती हुई घूँघट काढ़े हुए नयी वधुओंको देखकर माँने कहा था, " बेटा, ऐसी तेरी भी दुलहिन आ जाती तो मैं वह सुख देख लेती! " यद्यपि शव कोई ऐसी अमूल्य वस्तु नहीं जिसे कोई चुरा या उठा ले जाय पर केशवके मनमें बार-बार ऐसी आशंका सी उत्पन्न होती थी कि वह घूम-घूम कर देख लेता था कि गाड़ीपर शव रक्खा है या नहीं।

यद्यपि उसने विवाह इसी आशंकासे नहीं किया था कि कहीं बहू आकर माँ और उसके स्नेह-बन्धनमें बाधक न हो, पर उसे आज इसी बातका पछतावा हो रहा था कि उसने अपनी माँकी यह साध पूरी न की।

वे सुखद दिन आज दुखका कारण हो रहे थे, एक-एकको स्मरण करके कलेजा मुँहको आता था। रास्ता काटे न कटता था, सौ कोसका हुआ जा रहा था।

× × × × ×

जब केशव गंगाघाट पहुँचा, गोधूलिका समय था। वह फैला खुला प्रदेश साँयसाँय कर रहा था। उसकी गाड़ीको देखते ही गंगापुत्र, घाटवाला, मेहतर, महाब्राह्मण, सब इकट्ठे हो गये; वह भी एक नहीं, कई-कई अदद। उनमेंसे ज़्यादातर लम्बे-तगड़े थे। कठिन पेशानियाँ, खूब उभरे हुए चौड़े सीने उनकी फतुही और ऊंची-ऊँची धोतियोंसे जैसे निकले पड़ रहे थे। मरोड़ी हुई, चढ़ी हुई बड़ी-बड़ी मूछें चेहरेको भयानक बना रही थीं। सबके पास साम चढ़ी हुई, चिकनी, मोटी लाठियाँ थीं। केशव इन सबको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखना चाहता था, क्योंकि वे उसकी माताके स्वर्गारोहणमें सहायक होने वाले थे। पर, उनपर दृष्टि पड़ते ही उसके हृदयमें न जानें क्यों भयका संचार हुआ; कदाचित् उनके चेहरोंपर उसे सहानुभूतिके दर्शन न हुए, इसीलिये उसे उनकी दृष्टि बिल्कुल उन क़साइयोंसे मिलती-जुलती मालूम हुई जो बकरेके बाज़ारमें आनेपर यह अन्दाज लगाते हैं कि इस बकरेमें कितना गोश्त है। वह उन्हें देखकर घबड़ा गया। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसने गाँवसे किसीको साथ न लाकर गलती की। उनकी ओर देखनेका उसका साहस न हो रहा था। जो घूमकर पीछेकी ओर देखा तो उसका मित्र मोहन साइकिलपर दौड़ता हुआ घाटकी ओर आ रहा था। उसे देखकर केशवको गाड़ीसे उतरनेका ध्यान आया, वह उतरा; इतनेमें मोहन आकर उससे लिपट गया, दोनों ही खूब मिलकर रोये।

संयत होकर मोहनने पूछा—"क्यों जी, तुम अकेले क्यों आये? गाँवसे एक आदमी भी न लाये!"

मोहन बोला—"आनेको तो बहुतसे लोग तैयार थे, पर मैं ही नहीं लाया। आजकल कामका वक्त है।"

"भाड़में जाय ऐसा काम; काम तो रोजही होते रहते हैं। एक रोज न सही। टोला-पड़ोसके लोग होते कबके लिये हैं। इस दिन भी काम न आये तो कब आयेंगे। अच्छे तुम मना करने वाले और तुमसे भी अच्छे वे, जो तुम्हारे मना करनेसे मान गये! मैं तो तीन रोज़से बाज़ार गया था, दुकान लेकर तीसरे पहर लौटा तो मालूम हुआ कि अम्मा नहीं रहीं और तुम उन्हें लेकर अकेले यहाँ आये हो।" 'अम्मा' कहते-कहते मोहनकी आँखोंमें आँसू आ गये। उसने अपनी माँके न रहनेपर केशवकी माँको ही माँ समझा था, और माँने भी कभी उसे केशवसे कम न समझा था। उन्हीं स्नेहमयीकी मृत्युको सुनकर वह गाँवमें कैसे रुक सकता था। फिर उसने अपने आपको संयत किया, केशवसे कहकर शवको गाड़ीसे उतारा और बैल खोलने लगा।

बैल खोलते हुए उसने केशवसे पूछा—"लकड़ियोंके लिये कहा?"

"अभी कहाँ, मैं तो आकर खड़ा ही हुआ था, वैसे ही तुम आ गये।"

"कितनी आवेंगी लकड़ी?" केशवने पूछा।

इसके पहले कि मोहन जवाब दे, घाटवालोंमें से एक बोल उठा—"बारह मनसे कम क्या लगेंगी।"

"बारह मन!" मोहन चौंककर बोला—"हाड़ ही हाड़ तो हैं, क्या होगा बारह मनका!"

"लोगोंको जब लकड़ी तकमें किफ़ायत करनी होती है तो पता नहीं जलानेकी सोचते ही क्यों हैं। गाड़ दें कहीं वहीं, और छुट्टी पाजायँ। सब खर्चसे छुट्टी मिले"—उनमेंसे एक ऐसी आवाज़से बोला जो धीमी तो ज़रूर थी, पर इन लोगोंके सुननेके लिये पर्याप्त थी।

सुनकर मोहनको बड़ा बुरा मालूम हुआ, पर उसने ज़ब्त किया। केशवने कहा—"जितनी ये लोग कहें उतनी मँगा लो, मोहन!"

"नहीं जी, हमारा काम है; हमें समझना-बूझना है। यों तो आठ ही मन काफ़ी हैं, पर मंगा लो दस मन।"

गंगापुत्रके तेवरोंमें बल पड़ गये, पर उसने कहा—"हाँ, हाँ, जैसा ठीक समझो। आप दाग़ दोगे, बाबूजी!" केशवकी ओर देखकर उसने कहा—"तो आप बाल बनवालो।"

केशवने कहा, "अच्छी बात है।"

गंगापुत्रने ज़ोरसे आवाज़ दी, "लखना कहाँ है रे, चल बार बना आयके !"

"आयेन पंडित !" लखनाकी आवाज़ बहुत दूरसे सुनायी दी।

पंडितने वहींसे फिर लकड़ीवालेको अवाज़ दी, "जियावन, दस मन लकड़ी भेज देव !"

"अच्छा महाराज !" जियावन बोला।

इतनेमें नाई किस्मत लिये हुए आ गया।—"सवा रुपया होगा इस वक्त, मालिक !"

"सवा रुपया !" मोहनने कहा, "एक आदमीकी हजामतका सवा रुपया !"

उनमेंसे कोई फिर वैसे ही बोला, "तेलीका तेल जले मसालची—"

"क्या कहते हो तुम लोग, हम और वह क्या अलग अलग हैं ?"

नौआ बोला—"मालिक यह तो गंगाघाट है, जो कुछ दे डालोगे दान-धरममें शामिल होगा। हम दिन ही माँ दस आनेसे कम नहीं लेते हैं। इस वक्त सवा रुपयेसे कममें न बनावेंगे।"

"सवा रुपया तो हम नहीं देंगे," फिर भी मोहनने कहा।

"तो फिर मैं नहीं बनाऊँगा !" कहकर नौआ चल दिया।

"बनवा लीजिये, बाबू, बनवाना तो है ही, और इस वक्त दूसरा नाई भी तो यहाँ न मिलेगा। लौट आ लखना, एक रुपया ले लेना" पंडितने समझौता कराया।

लखना लौटा और केशवका सिर मूड़ने लगा। मोहनने मन ही मन कहा—कैसी मिली भगत है !

केशव सोच रहा था—यह कैसा बर्ताव है इन लोगोंका, मालूम होता है जैसे लूटनेके लिये ही बैठे हैं। जिसको देखो बढ़कर बोल रहा है। जिन ग़रीबोंके पास कुछ न होता होगा उनका पार कैसे लगता होगा !

केशवके बाल बन जानेपर शवको नहलानेके लिये गंगापुत्रने कहा। शवको केशव और मोहन लेकर चले। उन माँकी लाश जिनके शरीरमें कुछ न था इस समय केशव और मोहन दोनोंको ही भारी लग रही थी। बोझ उठानेसे जो कष्ट मनुष्यके हृदयमें होता है वह तो उनके हृदयोंमें किंचित् मात्र भी न था पर एक आशंका और भय था कि कहीं ऐसा न हो कि शव हाथसे छूट जाय। ज़मीनपर गिरनेसे शवको चोट नहीं लगती, पर उस समय मनुष्य इतने भावुक हो जाते हैं कि दुर्घटनावश अगर कभी ऐसा उनके हाथसे हो जाता है तो उन्हें जितना दुख होता है उतना शायद बच्चे या बीमारके हाथसे छूट जानेपर भी नहीं होता।

रात हो चुकी थी और घना अँधेरा सारी पृथ्वीपर फैल गया था, आसमानमें बादलोंने घिरना शुरू करके अन्धकारको और भी घना कर दिया था। घाट-वाला केशवसे पैसे लेकर एक बड़े कुल्हड़में आधा सेर तेल ले आया था, और उसी से एक मशाल उस घने अँधेरेको दूर करनेके लिये जला ली गयी थी। मशालकी

जलती हुई लौकी मोटी रेखा उस अन्धकारकी विशालताको सरपर उठाये हुए सी प्रतीत होती थी, जैसे किसी बहुत ही पतले तनेपर कोई डालियों और पत्तियोंका घना सा समूह दूरसे टँगा हुआ दिखायी दे रहा हो।

केशव और मोहन शवको लिये हुए सँभल-सँभलकर गंगामें उतरनेका प्रयत्न कर रहे थे, पग-पगपर फिसलनेका डर लग रहा था। दुखका एक तूफ़ान सा उमड़ कर उनके हृदय व मस्तिष्कको झकझोरे डाल रहा था जिसके कारण उनका सारा शरीर शिथिल सा होता हुआ प्रतीत हो रहा था। घाटवाला मशाल लिये बिल्कुल किनारेपर आ खड़ा हुआ था और उन्हें रास्ता बताता जाता था, "बस बस अब आगे न जाना, उधर गहरा है!" जब कि केशव और मोहन यह सोचकर आगे बढ़े जा रहे थे कि प्यारी माँके शवको किनारेके गन्दे पानीमें क्यों नहलायें।

मशालकी रोशनी उस अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ न हो रही थी। क्योंकि तेल में पानी मिला हुआ था, घाटवाला बार-बार मशालपर कुल्हड़से तेल डालता था पर तेल रोशनी कम बढ़ाता था, चिड़चिड़ाहटकी आवाज़ ज़्यादा पैदा करता था।

शवको पानीमें डुबकी देकर नहलानेकी क्रिया पूरी हो गयी तो गंगापुत्र बोला—"ज़रा बालू मुँह खोलकर लगा दो।" केशवने रोते हुए वह भी किया। फिर दोनों ही लड़खड़ाते पैरोंको जमाते हुए शव लेकर ऊपर आये।

लकड़ी लानेवाले मज़दूरोंने तब तक लकड़ियां ढेर कर दी थीं। वे मज़दूरीके लिये खड़े हुए बेसब्रीसे तगादे कर रहे थे। केशवने सोचा यह झंझट भी सिरसे हटाऊं। रुपयेकी तीन पसेरी लकड़ियाँ मिली थीं; दस-बीस रुपये पौने ग्यारह आने लकड़ी वालेने उसके लिये, फिर सौ गज़से लकड़ी लानेकी मज़दूरी मज़दूरोंने एक आना रुपया के हिसाबसे वसूल की। मोहन झुँझला-झुँझला पड़ता था—"सब तरहसे जैसे लूट मची हुई है। जैसे गिद्ध बेदर्दीसे शवको नोचते-खसोटते वक़्त दया, करुणाको पास नहीं फटकने देते हैं, वैसे ही इन सबका हाल है!" वह उठा और चिता बनाने लगा तो उसने देखा कि लकड़ियाँ दस मन क्या आठ मन भी न थीं, पर कुछ बोला नहीं।

गंगापुत्रने अपनी कड़कती हुई आवाज़में केशवसे कहा—"अब तुम करीय जाव, ये चकुआ लेव और लाश टिकटीसे अलग कर देव।"

केशवने कहा, "चाकूकी क्या ज़रूरत है!"— और वह सुतली खोलनेका प्रयत्न करने लगा, पर सुतली भीग जानेके कारण खुलती ही न थी। तब उसे विवश होकर चाकू लेना पड़ा। चाकूसे वह बड़ा सँभल-सँभलकर सुतली काट रहा था, डर लगता था कि चाकू कहीं शरीरमें न भुक जाय। यद्यपि निर्जीव शवके चोट खानेका अथवा घायल होनेका कोई अन्देशा न था पर केशवका हाथ काँपता हुआ ही चल रहा था।

चिता लग जानेपर लाश उसपर रख दी गयी । गंगापुत्र एक लोटेमें गंगाजल भर कर ले आया था--" लेओ जी, तुम यहाँ बैठो ।" केशव वहीं चिताकी बग़लमें उकड़ूँ होकर बैठ गया । गंगापुत्रने बिन्दुमात्रेण संस्कृतके अनुसार हर शब्दमें अनुस्वार लगा कर एक शुद्ध-अशुद्ध मंत्रकी पैरोडी सी पढ़ना शुरू की । साथमें कहता जाता था, "हाथमें जल लै लेव, सवा रुपया लै लेव, अपनी माताका नाम लै लेव, अमुकं गोत्र, कौनसे गोत्र है—भारद्वाज । "

इस तरह न जाने कितनी विधि निकालकर सवा-सवा रुपये और दस-दस पाँच-पाँच आने करके उसने दस-ग्यारह रुपये केशवसे ऐंठ लिये । हर विधिके बाद एक टका सांगिताका चलता था । केशव भी मनमें सोचने लगा था कि यदि यही क्रम चलता रहा तो कहीं दिवाला न निकल जाय । यह लोग तो मालूम होता है कि जैसे यह समझते हैं कि हर एक आदमी क़ारूँका खज़ाना अपने साथ लेकर आता है । इन्हें तो दयालु होना चाहिये, एकसे-एक दुखी गरीब इनकी शरणमें इस आशासे आते हैं कि ये मृत आत्माके शान्ति पानेमें सहायक होंगे, ये तो धर्मराज हैं । फिर भी ऐसी निर्ममता कैसे बर्तते हैं !

गंगापुत्रने कहा—" गंगाके किनारे अब अपनी माताके नामपर पाँच गोदान कराय देव ।"

" पाँच गोदान कितनेके होंगे महराज ?"—केशवने पूछा ।

" ढाई-ढाई रुपयेसे का कमके होंगे ।" गंगा पुत्रने दृढ़तासे कहा ।

" यानी साढ़े बारह रुपये । लगभग इतने ही तो मैं पहले दे चुका हूँ ।"

" दै चुके हो तो धर्मके नामपर दै चुके हौ, अपनी माँका परलोक बनावैके लिये दै चुके हौ, ऐसे तो कबहूँ आयके हमका दै नहीं गये रहौ ।" गंगा पुत्रने कड़ी बोलीमें कहा । " गौदान न कराओगे तो यमराजके हइयाँ कुत्ता-नोचन मचिहै । ई तुम्हार महतारी है, बड़ी साधसे पालिस-पोसिस होई कि हमार बेटवा लोक-परलोक दोनों बनाय देई—कितनी-कितनी तकलीफ तुम्हरे मारे सहेस होइहै, और तुम हौ जो ओहके वास्ते चार पैसाका मुँह तक रहे हौ ।"

मोहनसे अब बर्दाश्त न हुआ । उसका खून बड़ी देरसे धीरे-धीरे खौल रहा था, अब एक दम उबल पड़ा, चिल्लाकर बोला—" ये सब हमारे समझनेकी बात है, तुमसे इसका कोई मतलब नहीं । जब हम इतना नहीं देना चाहते तो...... ।'

" 'नहीं देना चाहते' का का मतलब ? हियाँ देना पड़ि है, यह गंगाघाट है । जब तक दान-दच्छिना पूरी न होइहैं लास ऐसे पड़ी रहिहै ।" कड़ककर बोला गंगा-पुत्र । उसकी आँखें सुर्ख़ हो गयीं ।

मोहनने खड़े होकर ज़ोरसे कहा--" तो तुम लाशमें आग नहीं लगाने दोगे ? "

" हाँ, हाँ, नहीं लगाने देंगे, तुम इतना अकड़त काहे हौ ! हर बातमें। मालूम नहीं है सरकार का टिकस देत हैं ? हमरी मर्जी बिना यहाँ कौनौ काज नहीं होई सकता है ! "

" तो तुम मनमानी घरजानी करोगे ? "

" करेंगे तो तुम रोक लेऊँगे ? बड़े बारहाँ हौ !" गंगा पुत्रने कहा--"तुम्हें मालूम है, एह जमीनके पीछे सालमाँ दुई-एक कतल हुई जात है, दुई-चारका फाँसी-डामिल हुई जात है । जो हम लोगनका मिलत न होय तो मूड़ दै-दैके ई जमीनपर काहे कब्जा रक्खा जाय । अब तक अगर कोई बराबरका होता तो एकाध मूँड़पर चढ़त जात हौ ''--कहकर गंगापुत्र खड़ा होनेको हुआ, और खड़े लोगोंने भी अपनी लाठियाँ सँभाल लीं ।

केशवने देखा सब नक़्शा ही बदला जाता है तो वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया--" महराज, हम तुम्हारे शरणागत हैं, हमारे ऊपर इतना क्रोध ! " फिर मोहनसे कहा---" तुम चुप रहो मोहन, देश-काल देखकर बातचीत किया करो । "

केशवके शब्दोंने सबको शान्त कर दिया । मोहन भी चुप हो गया---गंगापुत्रने भी सवा छः रुपयेमें गोदान करा दिये। पाँच ब्राह्मणोंका भोजन बोल देनेको कहने लगा । केशवने किसी तरह चिरौरी करके दोपर उसे राज़ी किया । अन्तमें वह अपनी दक्षिणा माँगने लगा, पाँचसे उसने मोल भाव शुरू किया, बड़ी मुश्किलसे ढाईपर तैयार हुआ । अब उसने केशवसे आग देनेको कहा ।

केशवने अपने सारे शरीरकी शक्ति हाथोंमें संचित करके रोते-बिलखते हुए जलता हुआ पतावर लेकर चितामें आग दी । अब तक जैसे उसे एक सहारा-सा बना हुआ था, अब उसे पूर्ण रूपसे मालूम हुआ कि उसका प्रथम तथा अन्तिम सहारा टूट गया, अब उसका कोई न रहा, वह किसीका न रहा ।

चिताकी आग धीरे-धीरे बढ़कर फैलने लगी, हाथ-पैर सब उसने घेर लिये । उस घने अन्धकारको भेदकर लपटोंने ऊपर उठनेका प्रयत्न किया ।

आगके बढ़ते ही हवा चारों तरफ़से घिर-घिरकर उसकी तरफ़ आने लगी और आग बढ़ने लगी ।

" अब नहाओ भैया चलके ! " घाटवालेने कहा ।

" अभीसे ? " केशवने कहा । " लाश जल जानेपर आग व फूल पानीमें प्रवाह करके, राम राम लिखके जायँगे । "

" यह सब हम लोग कर लेंगे भैया, क्यों हलाकान होते हो, और हम सब लोगोंको भी करते हो । चलो नहाओ चलके, ब्राह्मणोंको मिठाई दिलवाय देव, भुखाय गये हैं, कुछ जल पियो और अपने घरका जाव । "

गंगापुत्रने कहा—"इसमें कोई दौलत थोड़े ही रखी है जो हम लोग निकाल लेंगे? सबै लोग लास जलायके एही तरह छोड़ जात हैं। जलि जायपर राख गंगाजी मा परवाह करि दीन जात हैं।"

मोहनने आखों ही आखों केशवसे पूछा—क्या कहते हो, केशव? केशवने वैसे ही कहा—जैसा तुम ठीक समझो।

उस वातावरणने उन दोनोंका मन बोझिल कर दिया था। रह-रहकर सियारोंकी आवाज़ सुनायी दे रही थी। कुत्ते इस बुरी तरह आसपास घूमते थे, मालूम होता था टूट पड़ेंगे। थोड़ी दूरपर कुछ कुत्ते पानीमें लड़ रहे थे, कोई अध-जला शव उनके झगड़ेका कारण था। चिताके प्रकाशका घेरा इतना छोटा था जैसे अन्धकार उसे चारों ओरसे दबाये ले रहा हो। बढ़ी हुई गंगा हहर-हहरकर बह रही थी; उन्हें देखकर भी इस समय श्रद्धासे अधिक भय ही उत्पन्न होता था।

दोनोंने चलना ही ठीक समझा। चिताको अत्यन्त श्रद्धासे दण्डवत करके वे नहाने को घाटकी तरफ़ चले।

मशालके प्रकाशमें फिर गंगामें उतर कर नहाये। गंगापुत्र, अन्य दो ब्राह्मण और घाटवाला अभी उन्हें भोजनके लिये घेरे थे। बड़ा प्रयत्न करके उन लोगोंने दुकानें खुलवायीं, क्योंकि रात काफ़ी हो चुकी थी, दुकानें बन्द हो गयीं थीं।

केशवने कहा—"दो ब्राह्मणोंके लिये मिठाई दे देओ।"

"कितनी? कितनी?" दुकानदारने पूछा।

"तुम्हें मालूम नहीं है, सवा-सवा सेर खात हैं, आज कोई पहली दफे आये हैं तुम्हारी दुकान पर, जो पूछ रहे हो?"

"सवा-सवा सेर!" केशवने आश्चर्य प्रकट किया। उससे न रह गया।

"हाँ, हाँ, खिलायके देख लेव। एक-एक ऐसा आदमी यहाँ आता है जो हजार रुपया दै जाता है, तुम्हें भरपेट खवावै माँ मुस्किल पड़त है?" ब्राह्मण देवता बोले।

किसी तरह सेर भरपर वे राज़ी हुए। दोनों ब्राह्मणों और गंगापुत्रोंने सेर-सेर भर लिया, आध सेर घाटवालेने लिया।

मोहनने पाव भर मिठाई लेकर किसी तरह दो-एक बर्फ़ी केशवके मुखमें ठूँसकर उसे पानी पिलाया, खुद कुछ गलेसे उतार कर पानी पिया और तब गाड़ी जोत कर चले। फिर भी जब तक वह चले न गये, कहीं मेहतर पैसा माँगने आया, कहीं डोम। बराबर नोच-खसोट जारी रही।

वहाँसे निकलकर चले तो मोहनका क्रोध फिर उमड़ा, "ऐसे बदमाश हैं साले, ओफ़्ओह! पावें तो गर्दन दबाकर सब छीन लें।"

अब केशवकी भी श्रद्धा भरभरा कर गिर पड़ी। "ये तो जैसे आदमियतको पास ही नहीं फटकने देते हैं, आदमी ऐसा निर्मम हो सकता है, यह मैंने कभी न समझा था।"

उनकी गाड़ी अन्धकारको चीरती आगे बढ़ती गयी।

गंगा-किनारे अब फिरसे गंगापुत्र, घाटवासी, और मेहतर इत्यादि इकट्ठा हो गये थे। वातावरण उस समयका कुछ अजीब भयंकर सा हो गया था। हवा शब्द करती हुई भयंकर रूपसे चल रही थी, जिसमें कभी-कभी एकाध छींटे पानीके भी आ जाते थे। उस काली रातमें खड़े हुए देवाकार वे सब भूतों से प्रतीत होते थे। गंगापुत्रके आदेशपर मेहतरने गंगासे पानी उलीच-उलीच कर अध-जली चिता बुझा दी। उस गंगादेईकी अधजली लाश, जिसकी पूजा-पाठ करते ही उम्र बीती थी, मेहतरने घसीटकर गंगामें फेंक दी। फिर सब लकड़ियाँ बुझाली गयीं और माँ-बहनकी गाली-गलौजके साथ उनका आपसमें बँटवारा हुआ।

घाटवाला बोला—"अब का कहत हो पंडित। आज कुछ भाँग-बूटी न छनैगी?"

बुड्ढे डोमके मर जानेपर उसका लड़का अभी नया ही गाँवसे आया था, कच्चा था, उसे यह सब देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था, पर कुछ कह न पा रहा था। अब रुक न सका, बोला—"तुम्हौं एह बखत भाँगकी चलायेव!"

"अरे हट गदहा नहीं तो, हियाँ ई रोजका काम आय, ऐसे जो होय तो कबहूँ नसा-पानी हुई न पावे; है न पंडित, छनि है न?"

"छनि है, और जरूर छनि है, कौनौ-कौनौ दिन कैसा नखिद्द होई जात है कि न कुछ मिले न जुले और नसा-पानी तकका बखत न मिलै।" गंगापुत्र बोला।

"अब अस न कहौ, पंडित," मेहतर बोला—"पचीस-तीस तो तुम एहीसे मारेव।"

"तो मारेन तो का भवा, काम नहीं करावा? ऊ कहौ सार मूँजी साथ माँ लगि गवा आयके, नहीं कुछ और पौतेन। ऊ सार अस टर्र-टर्र लगाये रहै कि मन होत रहै टेटुआ दबाय देई, मुला हम कहा, को हत्या ले।"

घाटवाला बोला—"हटाओ ई रहबार, चलौ अब छनै।"

"हाँ, हाँ, चलो"—कह कर वे सब गंगाके किनारेसे झोपड़ियोंकी तरफ अँधेरेमें चल दिये।

अपने कवि से

गजानन माधव मुक्तिबोध

रुक गई क्यों आज इतनी देर
तेरी लेखनी ?
अब तक विकृत दुर्गंध शव-समुदायकी,
बंगालके कंकाल-विगलित कायकी,
वातावरण में—
पाप-स्मृति-दुःस्वप्न के भय-सी सहज
(वह घृणित लैंगिक व्यंग्य सी नंगी निलज)
है घूमती चहुँ ओर।
मानव-धाम में
निःसंग, नित बेचैन अंधे पंख के
चिमगादड़ों सी घूमती
असगुन-भरी दुश्चिह्न-सी।
या वह किसी अपराधका
हो भूत,
सपने में किसीके
मुख-अधर को चूमले विद्रूप ओठों से,
चरण-आघात से
रक्ताक्त करदे भाल फिर।
उस भीति के हिम-पात से
पाये निकल ही नहीं घुटती चीख़,
यों वह घूम ले।
अबतक विकृत दुर्गंध शव-समुदायकी
वातावरण में
आधुनिक अपराध-गाथा सी
बराबर छा रही :
फिर रुक गई क्यों आज इतनी देर तेरी लेखनी ?
क्या हो चली है मन्द
तेरी ज्योति चिर-आलेखिनी ?

संग्राम-स्थल की शून्य
बर्फ़ीली निशा के वात में
है फड़फड़ाती पंख व्याकुल आत्मा
मृत, व्यभिचरित, स्तन-दीर्ण जन-मातृत्वकी,
फैले हुए विकलांग अपराजित मृतक भ्रातृत्वकी।

उरमें दबे अंगार की।
मन-प्राणमें जलते हुए जंगल अमानव यातनाओंके:
उन्हींकी रक्तिमा,
संग्रामस्थल की शून्य बर्फ़ीली निशा के वात में
है काँपती अभियोग सी।
वह विकल एक विहंगिनी सी आत्मा
व्रण-पूर्ण जन-भ्रातृत्व, जन-मातृत्व की
है फड़फड़ाती पंख।
नीपर की तरंगित वेदनाओं से भरी
विक्षुब्ध धारा में
डुबो कर चंचु
जल पीते हुए वह विहगिनी
सारी गरीबिन मनुजता की पीड़नाओंकी
बनी वह संगिनी
यों आज तेरी आत्मामें बोलती वह विहगिनी।
फिर रुक गई क्यों आज इतनी देर तेरी लेखनी ?

क्या आज प्रति क्षण मिल नहीं पाती
बृहत् सुविशाल गाथा
महत्, मानव की कथा
व्यापक अजस्र समुद्र-सी
पल पल उमड़ती लहर जिसकी
है कथा की एक व्याकुल उप-कथा,
निःसीम, हिल्लोलित, दिशाव्यापी
निवेदित छन्द में
रामायणों की वेदनाओं की विभा सस्पन्द ले।
क्या आज प्रति क्षण
धूलि-कणमें भी
पसरता दीखता ही नहीं
नीला आसमान,
कि एक पूरा विश्व जीता जागता ?
कि एक नव-इतिहास मानव-श्वास का
उसके गगन में मेघ बन छाया नहीं ?
व्याकुल महा-संघर्ष
नूतन राम-रावण का भयंकर
धूलिकण-अन्तःकरण में क्या नहीं
प्रति पल तड़ित् सा सत्य बन कर कौंधता ?
क्या आज
उसके प्राणमें

मानव-सुरभि है डोलती ही नहीं
नव-संभावना सी, स्नेह सी ?
क्या नहीं मानव-वक्ष की
सब लौह-सीमाएँ
निरन्तर टूटती ही जा रहीं,
ज्यों टूटते हों दुर्ग औ' मैदान बढ़ते हों
कि बढ़ता जा रहा हो आसमान
अनेक अनदेखे
चमकते शान्त तारालोक में ?
क्या नहीं प्रति क्षण
द्रोह, करुणा, क्षोभ औ' प्रतिशोध के
उच्छ्वसित छन्दों में
सभी गृह-द्वार-वातायन
निरन्तर बोलते ?
क्या आज मानव-भाव
करुणाके, दयाके, धैर्यके
लघुरूप की एकान्तताको त्याग
आज सहस्रशीर्ष पुरुष विराट् नहीं हुए हैं ?
हार जाएगा हिमालय श्रृंग क्या ?
फिर रुक गई क्यों आज इतनी देर तेरी लेखनी ?

कवि, आज भी मानव
यहाँ पर मरे चूहे सा उपेक्षित है।
है बैलगाड़ीके अचानक राह में
दो भग्न पहियों सा पराजित।
युद्धमें टूटे हुए, उद्ध्वस्त पुल सा
है विदारित।
भग्न ईश्वर-मूर्ति-सा वह है, विखंडित-प्राण।
है फाड़ी हुई चिट्ठी सरीखा
घोर अपमानित सहज अनजान।
जर्जर मलिन अंचल-सा अनादृत दीन।
बूढ़, करुण, धुँधले लोचनों सा
मलिन तेज-विहीन।
वह अँधेरी श्याम गलियों सा उलझता व्यर्थ,
वंचित, वह प्रवंचित याचना असमर्थ।
फेंके प्याज़ के छिलकों सरीखा धूल खाता राह
यह पंजाब, यह बंगाल, यह है मालवे का दाह,
हिन्दुस्तान की यह एक मात्र कराह।

...किन्तु,
वह आत्मा
हिम-शून्य की घन, कुहर मूर्छामें अकेली ऊष्मा
औ' यह 'किन्तु' है नंगा चमकता तीर।
यह जन-प्राण के आग्नेय धनु पर है चढ़ा गंभीर,
यह प्रतिशोध का दुर्वार आकुल, तर्क।
यह बलिदान, हत्या, रक्त गुरु संघर्ष की तसवीर।
मानव प्राणमें
अविराम शब्दित युद्ध-दुंदुभि आज
कवि वाल्मीकि
ऐसे ही क्षणोंमें लिख रहे थे
मुग्ध लंका कांड के सब सैन्य-संगर-साज।
शिथिलिन लेखनी
अब होगई है यामिनी की नोक,
रक्तिम पंक्तियां द्रुत-लहर सी हैं बह रहीं बेरोक।
है बेरोक
मानवकी विशाल विराट् सत्ता आज।
उसके प्राणके अन्दर बने गहरे अनेक दराज़,
उनमें से निकलते हैं रिवॉल्वर लक्ष्य उत्सुक क्षुब्ध,
देशी औ' विदेशी शत्रुओंके मस्तकों पर लुब्ध।
जीवन के असीमित
शीत-श्यामल सिन्धु पर विकराल
घृणा के अति भव्य दीप-स्तम्भकी
है फैलती सन्तप्त नीली ज्वाल,
बढ़ते जा रहे हैं श्रमिक-कृषकों के
सुसज्जित युद्ध-पोत विशाल,
दारुण क्रान्तिकी अनिवार्यताके भाग्यमुग्ध प्रतीक।
लंबी धूलि-धूसर राहपर
पल-पल टपकते रक्त की अब पड़ गई है लीक।
मानव-प्राण के सन्ताप-तापित रक्तसे
आरक्त युगका भाल।
तेरी लेखनीकी नोक भी अब हो गई विकराल।

तेरी लेखनी की नोक भी अब होगई विकराल
टेबुल पर अथक
एकाग्र
पीली टिमटिमाती लौ तपे कन्दील की
भी अब भभक
विकराल होना चाहती।

औ' भीतपर बैठी हुई छाया तुम्हारे देहकी
भी फैल जाना चाहती,
हैं फैलते विस्तीर्ण मेघल पंख
ज्यों गंभीर-गाढ़-विचार-विहगोंके
दबाकर प्राणमें उठता हुआ उद्गार-आकुल ओज।
मटमैली झुकी दीवाल भी अब देखती हैं खोज
मानव-मूल्य की,
उसकी प्रतिष्ठा की
कि मानव-आत्मा की पूर्ण सत्ता की।
औ' धुएंसे विद्रूप इन काले छतोंमें
तैरते हैं स्वप्न
नीचे भूमिपर लेटे हुए बेचैन प्राणोंके,
कि चंचल दामिनी क क्षुब्ध
मृदु लावण्य
की नीली छटामें दीप्त
नूतन विश्वकी उद्भावनाके स्वप्न,
नूतन जन्म की ज्वाला-विलोड़ित वीथिका के
वेदनामय चित्र
मानव के करुण, विद्रूप औ' दुर्धर्ष
दृश्योंके तड़पते विश्व
मंडराते, कँपाते तैरते हैं
धुएंसे विद्रूप इन काले छतों में
अन्धकार-प्रसार पर ज्यों तैरते
विद्युल्लता के बिंब हों।
निःसीम गलियाँ भी हमारी
श्याम नागों सी
तड़पकर दौड़तीं
आबद्ध कर लेने विराजित राज-पथ की देह।
उनको देख
उसके ये बुज़ुर्ग दरख़्त भी
निज अनुभवो श्यामल जटाओं को हिला
गंभीर होकर बुदबुदाते।
आज लिख उनकी ज़बानी
ज़िन्दगी की यह कठिन लंबी कहानी
द्रोह की, विक्षोभ की,
उद्योग की, उत्ताप की।
गंभीर तेरे प्राण-मन्दिर-द्वारपर
है गूंजती आकुल नफ़ीरी तार-स्वर,

आदर्श के आक्रोश सी।
औ' दूर रजनी के क्षितिजमें
काँपता है एक सत्वर कोष।
विह्वल तूर्य की उन्मत्त लहरें
चढ़ रही हैं व्योम,
भर कर रोष।
लिख चल यह इधर लंबी कथा

भर चल उधर
निज प्राणका तू नित्य नूतन कोष
मानव विश्व के बचन रंगों-भरे हँसें आकाश से;
जिसमें
प्रखर जलते हुए रक्ताभ पथ-सा
बिछ गया है मुक्ति का मृदु लेख
मानव-मुक्तिकी इतिहास-गाथा सा।

अन्न-संकटके विरुद्ध बुद्धिजीवियोंका जेहाद

रमेश सिनहा

आनेवाले अकालकी भयावनी छायासे देश व्याकुल हो उठा है। और अब 'आनेवाले' का प्रश्न कहाँ रहा? अखबारोंकी कुछ रिपोर्टें देखिये :

"दिल्लीमें दक्षिण भारतके भूखे निराश्रितोंकी टोलियाँ घूमती दिखायी देने लगी हैं। उन्हें देखकर १९४३ में कलकत्तेकी सड़कोंके करुण दृश्य आँखोंमें फिर जाते हैं..." ('हिन्दुस्थान,' ५ मई, १९४६)। "पंजाबमें भी दक्षिणके काले, अधनंगे, भूखसे अधमरे दुखियारोंके दल धीरे-धीरे पहुँचने लगे हैं। उनकी उपस्थिति पंजाबवालोंको बतलाती है कि दक्षिणमें काल शुरू हो गया..." ('भारतज्योति,' १२ मई, १९४६)।

"उत्तर गढ़वाल (युक्त प्रान्त) में ग़रीब किसान जड़ें और पेड़ोंकी पत्तियाँ खा-खाकर मृत्युसे युद्ध कर रहे हैं..." ('अमृत बाज़ार पत्रिका,' इलाहाबाद, ८ मई १९४६)। "बिहारके हज़ारीबाग़ जिलेके बड़कागाँव थानेकी ९० प्रति शत जनता घास और महुआ खाकर जी रही है। अकालके साथ-साथ हैजेका भी प्रकोप हो रहा है। इन पंक्तियोंके लिखते समय तक ४० व्यक्ति मौतके मुँहमें जा चुके हैं..." ('सर्चलाइट,' २२ मई, १९४६)।

बंगाल इस विपत्तिसे कैसे दूर रह सकता था ? कलकत्तेकी सड़कोंपर भी कंगालों की फेरियाँ आरम्भ हो गयी हैं। "पहली मार्चसे अब तक वहाँसे १,९७० कंगालोंको हटाया जा चुका है। इधर उनकी संख्या और बढ़ने लगी है। मईके पहले ११ दिनोंमें २९५ कंगाल कलकत्ते आये। उनमें ११९ बंगाली थे, और बाकी युक्त प्रान्त, बिहार और उड़ीसाके"—'हिन्दुस्थान स्टैण्डर्ड,' १८ मई, १९४६)।

ग़ल्लेका भाव बढ़ रहा हैं।

हापुड़, युक्तप्रान्त में गेहूँकी सबसे बड़ी मंडी है। गेहूँका नियन्त्रित (कण्ट्रोल) भाव युक्त प्रान्तमें १०॥ रुपया मन है। हापुड़में वह १४ से १६ रुपया फ़ी मनकी दरसे मिलता है ('कामर्स,' बम्बई)। बंगालकी हालत और ख़राब है। चिंसुरामें चावलका भाव २१ से २६ रुपया ('हिन्दुस्थान स्टैण्डर्ड,' १७ मई, १९४६), ढाकामें मुंशीगंजमें १९ से २६ रुपया ('हिन्दू,' २५ मई, १९४६), मैमनसिंहमें १३ से २० रुपया, बढ़ गया है; और नारायनगंजमें तो वह ३५ रुपया फ़ी मन तक बिक रहा है।

दक्षिण भारतके बड़े-बड़े क्षेत्रोंको सूखा और अन्न-संकटके क्षेत्र घोषित कर दिया गया है।

बम्बई प्रेसीडेन्सीमें बीजापुर, बेलगाँव, धारवार, सतारा, शोलापुर, पूना और अहमदनगरके सात ज़िले; मद्रासमें रायलसीमाके पाँच ज़िले; और मैसूरके कोंकण, तुन्कुर और चित्तलदुर्गके तीन ज़िले अन्न-संकटके क्षेत्र घोषित हो गये हैं।

इन तीनों क्षेत्रोंके क्रमसे, ६५ लाख, ६० लाख, १० लाख, अर्थात् कुल १ करोड़ ३५ लाख नर-नारी अकालसे पीड़ित हैं।

त्रावणकोर, कोचीन, बिहार और युक्त प्रान्तके सम्बन्धमें भी सरकारी ऐलान किया गया है कि बाहरसे अन्न न आया तो निर्वाह नहीं होगा। इन क्षेत्रोंमें भी लाखों व्यक्तियों का जीवन संकटमें है।

१९४३ में, बंगालके अकालके समय, सरकारी आँकड़ोंके अनुसार देशमें लग-भग सवा चार करोड़ मन ग़ल्लेकी कमी हुई थी ('केन्द्रीय अन्न-सलाहकार समिति'की रिपोर्ट)। सरकारी आँकड़ोंको ही सही मान लिया जाय तो उस अकालमें ३०-३५ लाख भारतीय मरे थे।

इस वर्ष, १९४६ में, सरकारी हिसाबसे ही देशमें लगभग सत्रह करोड़ मन अन्न की कमी होगी। यह कमी १९४३ के टोटेसे चार गुना ज़्यादा है।

सरकारी अधिकारियों और विशेषज्ञोंका अनुमान है कि इस कमीके कारण डेढ़से दो करोड़ तक देशवासियोंका जीवन संकटमें है। वे कहते हैं कि डेढ़-दो करोड़ भारतीयोंकी मौत 'निश्चित' है!

इससे कुछ अनुमान हो सकता है कि परिस्थिति कितनी गम्भीर है।

मौतकी जो घटायें पिछले दो-तीन महीनोंसे घिर रही थीं, उन्होंने गरजना शुरू कर दिया है।

भुखमरीसे लोगोंकी मृत्युकी खबरें कलकत्ता और मद्रास आयी हैं।

किन्तु विशेषज्ञोंका कहना है कि असली संकट आयेगा एक-डेढ़ महीने बाद, अगस्त-सितम्बरमें।

पिछला अकाल मुख्यतया बंगाल तक सीमित था; इसकी विभीषिका सारे देशमें फैलेगी। पिछले, १९४३-४४ के अकालने बंग-भूमिको धराशायी किया था; १९४६ का अकाल देशके कितने हिस्सेको वीरान बनाकर जायगा?

बाहरसे अन्न आनेकी आशा बहुत कम है। साम्राज्यवादी अन्नको अपनी कूटनीतिक चालोंका साधन बना रहे हैं।

इस समय सबसे ज़्यादा अन्न अमरीकाके पास है। पर हिन्दुस्तानको देनेसे उसको कोई फ़ायदा नहीं। इसलिये हमें देनेके बजाय वह जापान और जर्मनीके साम्राज्यवादी फ़ासिस्टोंको मोटा करके अपनी तरफ़ मिलानेकी कोशिश कर रहा है।

प्रसिद्ध अंग्रेज़ पत्रकार गेल्डर स्टुअर्टने लिखा है कि अमरीकी सरकारके कृषि विभागके एक बड़े अधिकारीने उन्हें बतलाया है कि हिन्दुस्तानको अन्न नहीं भेजा जायगा क्योंकि उससे अमरीकाके बड़े-बड़े व्यापारी नाराज़ हो जायँगे और ट्रूमेन सरकारको उनके विरोधका सामना करना पड़ेगा। हिन्दुस्तानको अन्न भेजना अमरीकी साम्राज्यवादी, "व्यापार" की दृष्टिसे, हानिकारक समझते हैं।

इसलिये वे २९ करोड़ मन गल्ला गाय-बैलोंको खिला सकते हैं—यही अगले वर्षके लिये इस मदका उनका बजट है—किन्तु हिन्दुस्तानके डेढ़-दो करोड़ इन्सानोंको मौतके मुँहसे बचानेके लिये १६-१७ करोड़ मन अन्न हमें वे नहीं दे सकते।

हममें न एकता है, न देशमें हमारी संयुक्त सरकार है कि हम इन साम्राज्य-वादियोंपर किसी तरहका दबाव डाल सकें या अन्य किसी प्रकारसे ही इस विपत्तिको टालनेका प्रयत्न कर सकें।

बंगालके अकालमें हमारे ३० या ३५ लाख भाई-बहनोंकी केवल मौत ही नहीं आयी। उसकी आगमें और बहुतसी चीज़ें भी भस्म हो गयी थीं। ऐसी चीज़ें जो हमें जीवनसे भी अधिक प्यारी हैं, जो जीवन-संघर्षके घोर विषाद और निराशामय क्षणोंमें भी हमारा साहस बचाये रहती हैं और हमें आगे बढ़नेकी प्रेरणा देती हैं। उस अकालकी कालिमाने सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनके प्रेम, मैत्री, सहयोग, पारि-वारिक सम्बन्ध आदिके युग-युगसे संचित और पोषित भारतीय मूल्यों और भावनाओंको भी अपनी लपेटमें ले लिया था।

उस धक्केसे बंगाल अभी तक नहीं सँभला। फिर इस अकालमें देशके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनका क्या होगा?

ऐसे समयमें हम साहित्यिक कलाकार और अन्य बुद्धिजीवी क्या कर सकते हैं?

निश्चय ही, हम बहुत थोड़ा काम कर सकते हैं। हमारी शक्ति और क्षमता सीमित हैं।

फिर भी बंगालके अकालके समय किये गये कामका अनुभव हमारे सामने है। उसके आधारपर आगे बढ़ा जा सकता है।

बंगालके दुःखने हर सजग साहित्यिक, कलाकार और बुद्धिजीवीके हृदयपर चोट की थी और लगभग हर प्रान्तमें बंगालकी सहायताके लिये बुद्धिजीवियोंका आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था।

हिन्दीके साहित्यिकोंने तो इस आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया। प्रयागमें बंगालके सहायतार्थ होनेवाले कवि-सम्मेलनका नरेन्द्र शर्माने आयोजन किया और निरालाजी उसके अध्यक्ष बने थे। कांनपुरके आशुकवि जगमोहन अवस्थी और आगराके मलखानसिंह सिसौदिया और बीकानेरके मेघ वर्मा 'मुकुल' आदि तरुण और प्रतिभाशाली कवियोंने जगह-जगह अपनी रचनाएँ सुनाकर बंगालके लिये धन संग्रह किया था। युक्त प्रान्त और बिहारके ग्रामीण कवि, व्रज, अवधी, काशिका, भोजपुरी और मैथिलीमें गीत लिखकर बंगालके सन्देशको गाँव-गाँव ले गये थे। बच्चन, नरेन्द्र, सुमन, रामविलास शर्मा आदिने बंगालपर मर्म-स्पर्शी कविताएँ लिखी थीं। रांगेय राघव स्वयं बंगाल गये थे। और महादेवीजी द्वारा सम्पादित और प्रकाशित "बंग-दर्शन" तो हिन्दीके सेवकोंकी कर्तव्य-निष्ठा और वंग-प्रेमका सबसे गौरवशाली स्मारक है।

इसके अतिरिक्त जन नाट्य संघका भी बंगालकी सहायताके कार्यके लिये भरपूर उपयोग किया गया था।

जन नाट्य संघका आन्दोलन १९४२ में फ़ासिस्ट आक्रमणके संकटके दिनोंमें मज़दूरों-किसानोंके नेतृत्वमें बम्बई, बंगाल, आन्ध्र, पंजाब आदि मज़दूरों-किसानोंके संगठित क्षेत्रोंमें शुरू हुआ था। उसके पीछे प्रेरणा देशरक्षाकी थी। १९४२ में बंगालके दुष्कालके समय मध्यम वर्गीय साहित्यिक कलाकार और अन्य बुद्धिजीवी व्यापक रूपसे उसमें खिंच आये। संघके सांस्कृतिक दलने देशका दौरा किया। अपने नृत्यों, गीतों और अभिनयके द्वारा 'बंगालकी पुकार' सुनाकर उसने लगभग दो लाख रुपये इकट्ठे किये। किन्तु इससे भी बड़ा काम उसने यह किया कि बंगालके अकालके सम्बन्धमें लोगोंमें एक नयी चेतना भरी, उन्हें जगाया। साथ ही जहाँ भी वह गया उसने एक नये सांस्कृतिक आन्दोलनकी, जिसका स्रोत जन-जीवन है, नींव डाली।

आज यह आन्दोलन देश भरमें फैल चुका है। हमारे हाथमें वह एक अमोघ अस्त्र है। देशकी वास्तविक परिस्थितिसे लोगोंको परिचित कराके समय रहते उन्हें जगानेके लिये हम उसका उपयोग कर सकते हैं। आसन्न विपत्तिका सामना करनेका मार्ग भी इंगित किया जा सकता है।

इसी उद्देशसे प्रेरित होकर बम्बई प्रगतिशील लेखक संघके पाँच सदस्यों, कृष्णचन्द्र, ख़्वाजा अहमद अब्बास, डाक्टर मुल्कराज आनन्द, कुमारी अनिल डि सिलवा

धरतीके लालः वह अकाल हमारी संस्कृतिको भी खागया था। क्षुधासे विक्षिप्त दादी अपने पोतेके दूधकी शीशीपर झपट रही है।

[देखिये पृष्ठ ९४]

धरतीके लाल : कलकत्तेका अनाजचोर काले बाजारके लिये भोलेभाले किसानोंसे मोल-भाव कर रहा है। [देखिये पृष्ठ ९४]

और रमेश सिनहा, ने मिलकर एक घोषणापत्र तैयार किया। घोषणापत्रको कलाकारों, साहित्यिकों, चित्रकारों, अभिनेताओं, प्रोफ़ेसरों, डाक्टरों, वकीलों, पत्रकारों आदि नगरके प्रतिनिधि बुद्धिजीवियों और सांस्कृतिक कार्यकर्ताओंकी एक सभामें रखा गया। छोटे-मोटे सुझावोंके बाद सभाने घोषणापत्रको स्वीकार किया। घोषणापत्रके कार्यक्रमको व्यावहारिक रूप देनेके लिये एक 'अकालसे लड़नेके लिये सांस्कृतिक कार्यकर्ताओंकी समिति' ('दि कल्चरल वर्कर्स कमिटी फ़ॉर फाइटिंग फ़ेमीन') बनायी गयी। रमेश सिनहा उसके प्रधान मन्त्री नियुक्त किये गये और श्रीमती फ़ीरोज़ा वाडिया और श्रीमती राज थापर सहायक मन्त्री। घोषणा पत्र इस प्रकार था :—

रोटी और आज़ादीके लिये बुद्धिजीवियोंका घोषणापत्र

बंगालके दुखद अकालको बीते दो साल भी नहीं हुए कि देशपर उससे भी बड़े अकालके काले बादल घिरने लगे। बंगालके अकालमें ३० लाख व्यक्ति मर गये थे; उससे भी अधिक संख्यामें लोग बेघरबार और दर-दरके भिखारी हो गये थे, पर उससे देशकी युगों-पुरानी सभ्यता और सामाजिक तथा नैतिक नियमोंको कितना ज़बरदस्त धक्का लगा उसका अनुमान करना भी अभी मुश्किल है। और इस बार यह भीषण विपत्ति सारे देशपर आनेवाली है। देशके हर हिस्सेमें अन्न-संकट और अकालके चिह्न प्रकट होने लगे हैं। इस तरह जब सारी जनताके नैतिक और भौतिक जीवनके नष्ट होनेका ख़तरा है, तो कोई भी व्यक्ति अपनी आँखें बन्द करके नहीं बैठ सकता। लेखकों और कलाकारोंकी तो जिम्मेदारी इस वक्त और भी अधिक बढ़ जाती है।

इस परिस्थितिमें यह आवश्यक हो गया है कि कमसे कम उन बातोंपर ज़रूर हम गौर करें जो आज हमारे जीनेके लिये बुनियादी तौरपर ज़रूरी हैं, और जिनपर हमारा सारा भविष्य-निर्भर करता है।

सवाल उठता है कि आज जब गुलामीके बन्धनोंसे गला कटा जा रहा है और भुखमरी हमारे सामने मुह बाए खड़ी है तब हम बुद्धिजीवी क्या कर सकते हैं?

यह तो ज़ाहिर है कि साम्राज्यवादके ख़िलाफ़ देशकी आख़िरी जंगमें हम पीछे नहीं रह सकते। हमारे देशकी गरीबी और दुरवस्थाके लिये यही साम्राज्यवादी ही पूरे तौरसे जिम्मेदार हैं। अपने उज्वल भविष्यके द्वार खोलनेके लिये इस अड़ंगेको दूर करना आवश्यक है। इस महान कार्यमें देशके महान नेताओं द्वारा बनायी हुई परम्परासे हमें प्रेरणा मिलती है।

एक ओर जहाँ सामाजिक अन्यायों, असमानताओं और भेद-भावोंको समाजसे मिटानेके लिये हमें अपनी लड़ाईको जारी रखना है, वहाँ, इसीके साथ-साथ उद्योगशील बुद्धिजीवियोंकी हैसियतसे, इस संकट-कालमें अकालको देशमें फैलनेसे रोकनेके लिये अपनी सारी शक्तिसे जुट जाना है।

इस कार्यके लिये हमें अपनी प्रियसे प्रिय वस्तुओंकी स्मृतिको जगाना होगा, प्रत्येक नर-नारीका समर्थन प्राप्त करना होगा और देशके सभी विचारों और मतोंके नेताओंसे अपील करनी होगी कि महाविपत्तिके इस कठिन कालमें वे अपने तमाम मतभेदोंको भुलाकर एक हो जाएं।

हमें अपने तमाम देश-वासियोंके अन्दर आज़ादीकी ऐसी लौ जगानी होगी कि वे मनुष्य-निर्मित इन अकालोंको पैदा करने वाले साम्राज्यवादका तख्ता उलट दें। और हमेशाके इन संकटोंका अन्त कर दें। इसलिये, हम सारे देशके लेखकों, कवियों, चित्र-कारों, डाक्टरों, अध्यापकों, फ़िल्म-कलाकारों और अन्य सांस्कृतिक कार्यकर्त्ताओंसे अपील करते हैं कि वे इस संकट-कालमें संगठित होकर काममें जुट जायं।

आर्थिक माँगें

अकाल जैसी कठिन और तात्कालिक समस्या राष्ट्रीय योजना और क्रान्तिकारी आर्थिक व्यवस्थाके बिना हल नहीं की जा सकती। जब तक हम किसानको अर्द्ध-दासता और शोषणके चंगुलसे मुक्त करके उसमें यह विश्वास नहीं पैदा करते कि उसकी मेहनतका फल उसको मिलेगा, तब तक अन्न-संकटमें अपना खून-पसीना एक करके लोहा लेनेकी आशा हम उससे नहीं कर सकते। इस कामके लिये ज़रूरी है कि भूमिका राष्ट्रीयकरण किया जाय, और सब तरहकी 'बन्दोबस्त' व्यवस्था और ज़मींदारियोंका अन्त कर दिया जाय। तभी किसान अपनी ज़मीन जोतने-बोनेके लिये उत्साहित होगा, उसमें अधिकसे अधिक दिलचस्पी लेगा और जनताके लिये अधिकसे अधिक अनाज पैदा करेगा।

इसके अलावा पैदावार बढानेके लिये यह भी ज़रूरी है कि इस देशमें खेतीके वैज्ञानिक तरीक़ोंका इस्तेमाल किया जाय। वास्तवमें, अन्नके मामलेमें आत्मनिर्भर बननेके लिये यह आवश्यक है कि सारी खेती संगठित रूपमें की जाय और जहां तक सम्भव हो सके उसकी देख-रेख किसानोंकी सहयोग समितियां ही करें।

तात्कालिक आवश्यकताएँ

लेकिन जब तक ये सुधार हों देशकी भूखी जनताको मरनेके लिये नहीं छोड़ दिया जा सकता।

उसे मरनेसे बचानेके लिये हमें फ़ौरन कुछ न कुछ करना होगा। आज़ादीकी आशामें न तो अनिश्चित काल तक हाथपर हाथ धरे बैठा रहा जा सकता है और न सब कुछ विदेशी नौकरशाहोंके हाथमें छोड़ा जा सकता है। तजुर्बेसे हमने सीखा है कि इस मामलेमें उनकी अक्षम्य उदासीनता और कठोरताको राष्ट्रकी संगठित आवाज़से ही तोड़ा जा सकेगा।

इसलिये हमारी तात्कालिक मांगें ये हैं :—

(१) देशमें गल्लेका जितना भी स्टॉक हो उसका पूर्ण नियन्त्रण किया जाय।
अनाजचोरों और मुनाफ़ाखोरोंको सख्त सज़ाएँ दी जायँ।

(२) सारे देशमें अनाजको उचित ठिकानेसे बाँटनेके लिये एक सही योजना बनायी जाय।

अनाजका व्यक्तिगत व्यापार बन्द करके ग़ैर-क़ानूनी कर दिया जाय।

सारे देशमें राशनिंग हो।

(३) लगानमें कमीके द्वारा क़र्ज़-वसूलीपर रोक लगाकर किसानोंको अधिक अन्न उपजानेके लिये हर प्रकारसे उत्साहित किया जाय।

लेकिन इनसे यह न समझना चाहिये कि इन मांगोंको हम पूर्ण स्वतन्त्रताकी अपनी बुनियादी मांगकी जगहपर पेश कर रहे हैं। ये मांगें तो सिर्फ़ जनताकी तात्कालिक आवश्यकताओंको दूर करनेके लिये रखी गयी हैं।

वास्तवमें तो आज़ादी और रोटीकी समस्याओंको अलग नहीं किया जा सकता। साम्राज्यवादने हमें इन दोनोंसे वञ्चित कर रखा है। इसलिये इस समस्यापर इस प्रकार विचार करके न सिर्फ़ हम साम्राज्यवादियोंको भारत छोड़नेका नोटिस दे रहे हैं बल्कि इस नोटिसकी तामील करानेके लिये तमाम देशभक्तोंके सामने संयुक्त प्रयत्न और आन्दोलनका मार्ग भी स्पष्ट कर रहे हैं।

अकालका खतरा हमारी देशभक्तिके लिये एक चुनौती तो है ही, स्वतन्त्रता और सामाजिक न्यायके लिये देशवासियोंको संयुक्त करनेका हमारे सामने वह सबसे बड़ा अवसर भी है।

घोषणापत्रको पास करनेके बाद समितिके कार्यकी सीमा निर्धारित करते हुए निश्चय किया गया कि इस समय हमारा मुख्य कार्य घोषणापत्रकी माँगोंके लिये प्रचार करनेके अतिरिक्त देशवासियोंको अकालके सम्बन्धमें सही-सही और पूरी जानकारी देना है।

अकालके क्षेत्रोंमें जाकर काम करना या स्वतन्त्र भोजन-गृह चलाना हमारी शक्तिके बाहर है। ये कार्य दूसरी संस्थाएं करेंगी। अपने स्वतन्त्र अस्तित्वको बनाये रखकर हम उनमेंसे प्रत्येकके साथ पूरा सहयोग करेंगे। लेकिन हमारा मुख्य कार्य वास्तविक स्थितिकी सूचना देना और उस सम्बन्धमें प्रचार करना होगा, जो दूसरी तमाम संस्थाओं-की बनिस्बत हम ज़्यादा अच्छी तरह कर सकेंगे। इस कार्यमें हर पार्टी और व्यक्तिकी हम मदद लेंगे, लेकिन अपनेको किसीके साथ मिलायेंगे नहीं।

सांस्कृतिक कार्यकर्ताओंकी अकाल-विरोधी समिति एक निर्दली पार्टी का संयुक्त संगठन होगा जिसमें घोषणापत्रके बुनियादी उद्देश्योंसे सहमत होनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके लिये स्थान होगा।

तात्कालिक कार्यके सम्बन्धमें निम्न निश्चय किये गये :

१) महाराष्ट्रके चुने हुए अकाल-पीड़ित क्षेत्रोंमें स्थितिका अध्ययन करनेके लिये लेखकों कलाकारों, पत्रकारों, डाक्टरों आदिकी छोटी-छोटी टुकड़ियां भेजी जायँ।

सब क्षेत्रोंकी हालतका परिचय देनेके लिये लेख, स्केच, चित्र, फ़ोटोग्राफ़ आदि प्रकाशित किये जायँ। समितिकी ओरसे ये लेख, चित्र आदि देशके तमाम पत्रोंको मुफ़्त सप्लाई किये जायँ।

२) जन नाट्य संघ तथा अन्य फ़िल्मी संस्थाओंकी सहायतासे छोटे-छोटे सच्चे फ़िल्म, तथ्यात्मक,(डाकुमेन्टरी) फ़िल्म तैयार किये जायँ।

३) नाटकों तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमोंके द्वारा अकालकी भीषणतासे लोगोंको परिचित कराया जाय। साथ ही पीड़ितोंकी सहायताके लिये टिकटों आदिके द्वारा चन्दा इकट्ठा किया जाय।

४) पर्याप्त तैयारी कर लेनेके बाद एक अखिल भारतीय दिन मनाया जाय जिस दिन देशभरके बुद्धिजीवी और कलाकार प्रदर्शन करें और विचारविनिमय करें।

इनके अतिरिक्त यह भी निश्चय किया गया कि डाक्टर नायडू (जो बम्बई की बंगाल सहायता समितिके अध्यक्ष थे और हमारी नयी समितिके सदस्य हैं) तथा अन्य

सज्जनों की सहायतासे बंगाल सहायता-कार्यसे सम्बन्धित अनुभवोंका परिचय देते हुए एक पुस्तिका प्रकाशित की जाय, और समितिके कार्यके लिये पैसा इकट्ठा करनेके लिये बंगालके अकालके सम्बन्धमें "न्यूज़ क्रानिकल" के प्रसिद्ध चित्रकार विकी बामके स्केचोंको डा. मुल्कराज आनन्दकी भूमिकाके साथ छापा जाय। काफ़ी दस्तख़्त इकट्ठे हो जानेपर समितिके घोषणापत्रको भी एक पैम्फ़्लेटके रूपमें निकाला जाय। घोषणापत्रकी प्रतियाँ देशके दूसरे भागोंके सांस्कृतिक कार्यकर्ताओंके पास भेजकर इस कार्यको उठानेके लिये उनसे अपील की जाय।

समितिने घोषणापत्रको छपाकर देशके अन्य केन्द्रोंके पास भेज दिया है।

सदस्यों, समर्थकों तथा अन्य लोगोंके पास, जिनसे सहयोगकी आशा है, दो गश्ती चिट्ठियाँ भी भेजी जा चुकी हैं। एक सहायककी कृपासे विकी बॉमके स्केचोंका संग्रह प्रकाशित कया गया है। अकाल-पीड़ित क्षेत्रोंके दौरे तथा दूसरे कामोंके सम्बन्धमें सहायता कार्यमें दिलचस्पी रखनेवाली अन्य संस्थाओं तथा अधिकारियोंके साथ पत्र-व्यवहार किया गया है। घोषणापत्रपर अबतक लगभग दो सौ साहित्यकों, कलाकारों वैज्ञानिकों तथा अन्य बुद्धि-जीवियोंके दस्तखत हो चुके हैं। समितिको प्रगतिशील लेखक संघ और जन नाट्य संघके अलावा बम्बईकी प्रसिद्ध फ़िल्म आर्टिस्ट एसोसिएशनकी पूर्ण सहायताका आश्वासन मिल गया है।

घोषणापत्रपर जिन लोगोंने हस्ताक्षर किये हैं उनमें कुछके नाम ये हैं:—**लेखक और साहित्यकार**, सज्जाद जहीर, आर० ए० बकुलेश (गुजरातीके सर्वश्रेष्ठ कहानीकार), एस० ए० सबावाला, महेन्द्रनाथ, इस्मत शाहिद लतीफ़, शाहिद लतीफ़, फ़ीरोज़ मिस्त्री, रमेश थापर, जशवन्त ठक्कर, टी० गोडीवाला, आर० के० चन्डी, अली-सरदार जाफ़री, स्वप्नस्थ, नज़र हैदराबादी, भोगीलाल गान्धी; **अभिनेता :** पृथ्वीराज, जयराज, डेविड, सहगल, त्रिलोक कपूर, श्याम, उज़रा बेगम, के० एम्० फन्सालकर, बलराज और दमयन्ती साहनी, ज़ोहरा और कामेश्वर सेगल, बट्ट, हमीद लीला जरीवाला शम्भू मित्र। **दूसरे सांस्कृतिक कार्यकर्ता :** वी. पी. साठे, 'डा. कोटणीस की अमर कहनीके संयुक्त कहानीकार), चित्ता प्रसाद (चित्रकार), डी० आर० डी० वाडिया (फ़िल्म निर्माता और फ़ोटोग्राफ़र), सुनील जाना (फ़ोटोग्राफ़र), गोरे (चित्र-कार), डाक्टर नायडू; आदि।

इनके अतिरिक्त बंगालके निम्न प्रसिद्ध साहित्यकारोंने भी घोषणापत्रपर दस्त-ख़त किये हैं : तारा शंकर बनर्जी, सैलजानन्द मुकर्जी, विष्णु दे, माणिक बनर्जी, हीरेन मुकर्जी हीरेन सान्याल, गोपाल हलदार, सुभाष मुकर्जी, विमल घोष, नीरेन राय, नीहार सरकार, आदि।

परिस्थितिकी गम्भीरताको देखते हुए यह कार्य बहुत थोड़ा है।

उपर्युक्त कार्यक्रम बन जानेके बाद ही तमाम देशका ध्यान ब्रिटिश मन्त्रि मण्डलके साथ समझौतेकी बातचीतकी ओर लग गया। बम्बईमें गर्मियोंकी छुट्टियाँ हो जानेसे बहुतसे सदस्योंको बाहर भी चला जाना पड़ा। इससे समितिका काम उतनी तेजीसे नहीं बढ़ सका जितनीकी आशा थी।

फिर भी काम शुरू कर दिया गया है। इस योजनाके आधारपर अन्य स्थानोंमें भी स्थानीय परिस्थितिको देखकर साथी साहित्यिक काममें हाथ लगा सकते हैं।

बंगालके अकालके समय हमने समझा था कि उससे बड़ी परीक्षा लेखकों और कलाकारोंके जीवनमें शायद फिर कभी न आयगी। पर आजकी परीक्षा उससे भी कठिन है। इसमें पास होकर ही जनता और देशके प्रति हम अपना कर्तव्य पूरा कर सकेंगे। हम सब मिलकर जेहाद बोल दें, तो हम अवश्य सफल होंगे। हमारी सफलता देशके लाखों-करोड़ों जनकी सफलता होगी।

चित्रकार—चित्त प्रसाद

चंपा

प्रभाकर माचवे

रंग-रंगके अनगिन गान-प्रमत्त विहंग,
उरल उत्स नृत्यातुर, चपल उमंग।
हेमल चंपक-तरु परिमलित हवाएँ।
विंध्याकी चट्टानें दायें-बायें—
फैली हैं विकराल कटी-टूटी, झुकतीसी।
बिंदु बिंदुमें धाराएं चलती-रुकतीसी।

प्रकृति—कवितारचना मग्ना;
जीवनपंक्ति पारदर्शी है।
गिरिमालाएं भग्ना, नग्ना,
विराट् औ' गगनस्पर्शी हैं।

कपोताभ संध्या। बढ़ता तम—
केशराशि ज्यों अस्तव्यस्ता।
धीरे-धीरे होती पश्चिम—
आरक्ता, संत्रस्ता, ग्रस्ता।
पूर्व-दिशा फिर भी है आदिम,
हलकी गैरिक ज्यों सन्यस्ता।

ऐसी पार्श्वभूमिपर अपनी,
फैलाए सिकतामें शिपा,
या त्रितालमें जैसे झंपा,
अथवा नवमेघोंमें शंपा,
धुली हुई खादीकी कफ़नी,
पहिने है भोलीसी चंपा।

कूटनीतिके यहां न कोई
षट्पद वाले भ्रमर गूंजते;
मातृभूमिपर बलि हो खोई,
अनाघ्रात, अनदर्शित, सोई,
ज्यों शहीद हों समर जूझते !
कविगन उनको सदा पूजते !

शिमला और दीनू

(सानेट)

प्रभाकर माचवे

बारिश है। गड्ढोंमें पानी, कीच-सनी है सारी बाट।
छाता कैसे दीनू लेवे ? कंटरोल-दर ८॥
" पढ़ता हूँ मैं दैनिक : आज जवाहरसे भेटें श्री लाट
पर मेरा मन शिमलेपरसे अनजाने क्यों हुआ उचाट !
" उसी बाटपर दीनूकी घरवाली, सर-ता-पा भींगी
गीला, फटा, मलीन वस्त्र तनसे चिपटा है, अधनंगी,
बड़ी लगनसे मिलमें रोटी लिये जा रही जल्दीसे।
खा लेगा वह रूखी-सूखी, नोन प्याज़ औ' हल्दी से।
पढ़ता हूँ : नेतागण ताता-बिर्ला स्कीम सराहें जो,
नेताकी दीनूकी जान पड़ रहीं अब तो राहें दो :
नेताका रस्ता शिमलाकी ओर, नई दिल्ली, पद-पथ
दीनूका रस्ता काँदोंसे सरपट, कांटोंसे लथपथ।
पढ़ता हूँ : नेताने अर्थसचिवपद जो स्वीकार किया
पर ऐसे लाखों दीनूने मन-मनमें धिक्कार दिया !

'मुसद्दस' और 'भारत-भारती' की सांस्कृतिक भूमिका—१

शमशेर बहादुर सिंह

हालीकी मशहूर क़ौमी नज़्म 'मुसद्दस' अबसे छः पीढ़ी पूर्व और मैथिलीशरणजीकी 'भारत भारती' चार पीढ़ी पूर्वकी देशकी जागरूक भावनाओंका प्रतिबिम्ब हैं। दोनों मिलकर हमारी आजकी जातिगत राष्ट्रीय भावनाओंकी भूमिका प्रस्तुत करती हैं। दोनोंमें हमारी संस्कृतिके मुख्य आधारोंका परिचय देनेका प्रयत्न किया गया है। 'मुसद्दस' में मुस्लिम संस्कृतिका, 'भारत भारती' में हिन्दू संस्कृतिका।

इन दोनों कविताओंमें कवियोंने बहुत कठिन जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और उसे शक्ति भर निभाया। उन्होंने लोक-प्रिय काव्य-रूपमें जातीय इतिहासका मूल्यांकन, "वर्तमान" का सच्चा वर्णन, और भविष्यके लिये स्पष्ट कर्तव्य-निर्देश हमें दिया।

दोनोंमें कवि अपने पाठकसे कहता है कि समय बदल गया है, तुम्हें भी उसके अनुरूप बदल जाना चाहिये—मगर अपनी महान परम्पराकी मर्यादा रखते हुए।

हम लेखके पहले भाग में 'मुसद्दस' को लेंगे।

हाली कहते हैं—

"...ज़मानेका नया ठाठ देखकर पुरानी शायरीसे दिल भर गया था और झूठे ढकोसले बाँधनेसे शर्म आने लगी थी।...क़ौमके एक सच्चे खैरख़्वाहने... आकर मलामत[1] की और ग़ैरत[2] दिलायी कि हैवाने-नातिक़[3] होनेका दावा करना और ख़ुदाकी दी हुई ज़बानसे कुछ काम न लेना बड़े शर्मकी बात है।

"क़ौमकी हालत तबाह है।...मगर नज़्म... क़ौमको जगानेके लिये अब तक किसीने नहीं लिखी।" अस्तु, "बरसोंकी बुझी हुई तबीअतमें एक वलवला[4] पैदा हुआ, और बासी कढ़ीमें एक उबाल आया। अफ़सुर्दा[5] दिल, बोसीदा[6] दिमाग़, जो अमराज़के[7] मुतवातिर[8] हमलोंसे किसी कामके न रहे थे, उन्हींसे काम लेना शुरू किया और एक मुसद्दस[9] की बुनियाद डाली।"

—'मुसद्दस'की भूमिका।

वह 'क़ौमका सच्चा खैरख़्वाह' सर सैयद अहमद खाँ था। सर सैयद अहमद उस समय मुसलमानोंमें एक बहुत बड़े सांस्कृतिक आन्दोलनकी पेशवाई कर रहे थे। हालीके 'मुसद्दस'का सम्बन्ध उसी आन्दोलनसे है। इसको समझनेके लिये यहाँ मुसलमानोंके राष्ट्रीय इतिहासकी एक झलक लेना ज़रूरी होगा।

सन् सत्तावनकी क्रान्ति विफल हो जानेके बाद मुसलमानोंमें भारी निराशा और पस्ती छा गयी। मुग़ल साम्राज्य, अवधकी नवाबी और कितनी ही रियासतें, बड़ी-बड़ी जागीरें, और उनका वैभव और सत्ता, ख़त्म हो चुकी थी, और उनके साथ-साथ वे सांस्कृतिक संस्थाएँ भी, जिनका पोषण उन अमलदारियोंमें होता आया था। शिक्षाके लिये एक तिहाई माफ़ियाँ ('वक़्फ़') मुसलमानोंको मिली हुई थीं, वे सब सरकारने अपने हाथमें ले लीं। फ़ौजी महकमा भी मुसलमानोंके लिये बन्द हो गया। गवरमेंटको मुसलमानोंपर भरोसा नहीं था। पंजाबमें, लगभग सन् १८३० से, अंग्रेज़-विरोध पहले ही 'वहाबी आन्दोलन' का रूप धारण कर चुका था। यह कई पीढ़ी तक चला इस सक्रिय विरोधके पीछे पुनरुत्थानकी तीव्र भावना थी।

---

१. झिड़का। २. शर्म। ३. मुँहसे बोल लेने वाला जीव। ४. उमंग। ५. मुर्झाया हुआ। ६. सड़ा हुआ। ७. रोग। ८. लगातार ९. 'मुसद्दस'का अर्थ है छः-छः पदोंके बन्द वाली कविता। हालीके इस मुसद्दसका शीर्षक "मद्दो-जज़्रे-इस्लाम" अर्थात् 'इस्लामका ज्वारभाटा' है, पर वह "मुसद्दसे-हाली" अथवा केवल "मुसद्दस" के नामसे ही अधिक विख्यात है।

मौलवियोंने अपने फ़तवोंमें घोषित किया कि फ़िरंगी इस्लामका दुश्मन है। तीव्र अंग्रेज़-विरोधी कटुता मुसलमानोंमें भर गयी। लेकिन उनका आन्दोलन दबा दिया गया। फलस्वरूप पस्ती और निराशाके वातावरणमें मुस्लिम समाजकी मर्यादा नष्ट होने लगी। इस दशाको साफ़-साफ़ सबसे पहले देखा सर सैयदने।

सर सैयदने मुसलमानोंको चेतावनी दी कि युगकी माँगें बदल गयी हैं। संसारकी जातियोंमें प्रगतिकी होड़ लगी हुई है। जिस जातिके अधिकारमें विज्ञान, व्यापार और राजनीतिकी बागडोर होगी, वही औरोंसे बाज़ी ले जायगी। उन्होंने मुसलमानोंको अन्धविश्वास और अकर्मण्यताके गर्तसे निकालकर देशकी सामान्य राजनीतिक तथा सामाजिक प्रगतिमें योग्यतासे भाग लेनेके लिये प्रोत्साहित किया। उनके लिये अलीगढ़ और दिल्लीमें कालेजोंकी नींव डाली, स्कूल खोले, अख़बार जारी किया; सभाओं और असेम्बलीमें हर प्रकारसे उनकी उन्नतिके लिये प्रचार किया।

हालीने भी अपनी कविताका पुराना स्वर बदल दिया, और जाति और देशके लिये मंगलकारी उद्देश्यपूर्ण रचनाएँ लिखना आरम्भ कर दी, जैसे, 'बेवाओंकी मनाजात,' 'बरखा रुत,' आधुनिक शैलीपर काव्यालोचना, आदि। देशवासियोंकी भावनाओंका परिष्कार और परिमार्जन वे उसी प्रकार कर रहे थे जिस प्रकार सर सैयद उनकी रूढ़ मान्यताओं और पुराने विचारोंका। उत्तर भारतके सांस्कृतिक समुत्थानमें हालीका इसी लिये ऐतिहासिक महत्त्व है।

हालीका 'मुसद्दस' मुसलमानोंकी एक छोटी-मोटी गुटका-रामायण ही समझना चाहिये। हालीने भी शायद इस 'मुसद्दस'से सुन्दर और महत्त्वपूर्ण दूसरी कविता नहीं लिखी।

मुसद्दसका आरम्भ इस रुबाईसे होताहै—

पस्तीका कोई हदसे गुज़रना देखे !
इस्लामका गिरकर न उभरना देखे !
माने न कभी कि मद है हर जज़्रके बाद
दरयाका हमारे जो उतरना देखे !

हालीके काव्यमें उनका पूरा युग बोलता है। उस युगकी पूरी माँगें मुखर होती हैं: और कितना दर्द है उस स्वरकी उन्मुखता में, कितना निश्छल अपनाव, कितना सीधा-सादा असर!

बहुत आग चिलमोंकी सुलगानेवाले,
बहुत घासकी गठरियाँ लाने वाले,
बहुत दर-ब-दर माँग कर खानेवाले
बहुत फ़ाक़े कर-करके मर जाने वाले,

—जो पूछो कि किस खानके हैं वो जौहर,
तो निकलेंगे नस्ल-मलूक[1] उनमें अक्सर।

य' जो कुछ हुआ, एक शम्मा है उसका
कि जो वक़्त यारों पे है आने वाला; ...
नहीं गर्चे कुछ क़ौममें हाल बाक़ी,
अभी और होना है पामाल बाक़ी।

हालीने क़ौमकी दर्दनाक हालत देखी, लेकिन वह इस अवनतिसे हताश नहीं हुए। 'ज़मीमे' (मुसद्दसके परिशिष्ट भाग) में आशाका धुँधला प्रकाश इस गहरी करुणाके विरामको मिटाने लगता है। हम देखते हैं, धीरे-धीरे उभरकर, समाजके प्रत्येक अंगमें करवटें लेती, अलसायी चेतना किस प्रकार शैथिल्यको त्यागकर जीवनको प्रगतिकी ओर उन्मुख कर रही है :

बहुत दिनसे दरियाका पानी खड़ा था। ...
हुई थी ये पानीसे ज़ायल रवानी
कि मुश्किलसे कह सकते थे उसको पानी,
पर अब उसमें रौ कुछ-कुछ आने लगी है,
किनारोंको उसके हिलाने लगी है;
हवा बुलबुले कुछ उठाने लगी है,
अफ़ूनत[2] वो पानीसे जाने लगी है ...

और लोग अब—

ज़रा दस्तो-बाज़ू हिलाने लगे हैं;
वो सोतेमें कुछ कुलबुलाने लगे हैं। ...
बुज़ुर्गोंके दावोंसे फिरने लगे हैं;
वो खुद-अपनी नज़रोंसे गिरने लगे हैं। ...
नयी रोशनीसे हैं आँखें चुराते,
मगर साथ ही यह भी हैं कहते जाते,
कि दुनिया नहीं गर्चे रहनेके क़ाबिल
पर इस तरह दुनियामें रहना है मुश्किल ...
धुएँ कुछ दिलोंसे निकलने लगे हैं;
कुछ आरे-से सीनोंपे चलने लगे हैं;
वो ग़फ़लतकी रातें गुज़रनेको हैं अब,
नशे जो चढ़े थे उतरनेको हैं अब। ...
नहीं गर्चे कुछ दर्द-इस्लाम उनको,
बराबर है, हो सुबह या शाम, उनको,
मगर क़ौमकी सुनके कोई मुसीबत,
उन्हें कुछ न कुछ आ ही जाती है रिक्क़त[3]।

मेहनत करनेकी ठानकर कुछ लोग उठते हैं; अपनेको वक़्तके तक़ाज़ोंपर ढालते हैं समाजकी रोज़ाना ज़िन्दगीके हर मोड़पर वह अपने उपयोग और अपनी इन्सानियतका

१. राजसी घराने के। २. दुर्गन्ध ३. झेंप, शर्मिन्दगी।

सबूत देते हैं। पर कुछ काहिलुलवजूद, सन्देहधारी भी हैं; जो स्वार्थी हैं, चाहते हैं बस खानेको पेटभर मिलता रहे, मेहनतकी सख़्तियाँ उठानेकी उनमें हिम्मत नहीं; अपनी निष्फलतापर रोते हैं, कि दैव उनसे प्रसन्न नहीं।

हाली कहते हैं कि इन्हीं निकम्मोंने, जो नहीं जानते कि 'हरकतमें होती है बरकत खुदाकी', सल्तनतोंको तबाह कर दिया है। वे आगाह करते हैं कि

बचो ऐसे शूमोंकी परछाइयोंसे,
डरो ऐसे चुपचाप यग़माइयों[1] से।

लेकिन पुरुषार्थियोंका भी एक संसार है।

ये पुरुषार्थी हैं किसान-मज़दूर और उनके साथी बुद्धिजीवी। इनकी प्रशस्ति हालीने दिल खोलकर लिखी है।

वो थकते हैं और चैन पाती है दुनिया;
कमाते हैं वह और खाती है दुनिया।...
समझते नहीं इसमें जाँ अपनी जाँ को,
वो मर-मरके रखते हैं ज़िन्दा जहाँ को।
न लू जेठकी दम तुड़ाती है उनका,
न ठिर माघकी जी छुड़ाती है उनका।
उन्हींका उजाला है हर रहगुज़र में
उन्हींकी है यह रौशनी दश्तो-दर[2] में
हरेक मुल्कमें ख़ैरो-बरकत है उनसे,
हरेक क़ौमकी शानो-शौकत है उनसे।
नजाबत है उनसे, शराफ़त है उनसे,
शरफ़[3] उनसे, फ़ख़्र उनसे, इज़्ज़त है उनसे।

फिर हाली विज्ञानकी दुनियामें अपनी जातिका आह्वान करते हैं। इसी दुनिया में पश्चिमी राष्ट्रोंने पूर्वको परास्त किया है।

बस अब इल्मो-फ़नके वो फैलाओ सामाँ
कि नस्लें तुम्हारी बनें जिनसे इन्साँ,
ग़रीबोंको राहे-तरक़्क़ी हो आसाँ,
अमीरोंमें हो नूरे-तालीम ताबाँ[4]।...
रईसोंकी जागीरदारोंकी दौलत,
फ़क़ीहों[5] की, दानिशवरों[6] की फ़ज़ीलत,[7]
बुज़ुर्गोंकी औ' वाइज़ों[8] की नसीहत
अदीबों[9] की औ' शायरोंकी फ़साहत[10]
जँचे तब कुछ आंखोंमें अहले-वतनकी
जो काम आये बहबूद[11] में अंजुमनकी,

---

१. लुटेरों। २. जंगल और बस्ती। ३. श्रेष्ठता। ४. दीप्त। ५. धर्मशास्त्रवेत्ताओं। ६. बुद्धिमानों। ७. श्रेष्ठता। ८. उपदेशकों। ९. साहित्यिकों। १०. रसज्ञता। ११. भलाई।

हाली जन-समाजके बढ़ते हुए आत्मविश्वासको, लोक-तन्त्रकी बढ़ती रौको, आने-वाले आन्दोलनोंको, धुँधला-धुँधला मगर असन्दिग्ध-रूपसे महसूस कर रहे थे। इसीलिये उन्होंने इस्लामका लोकतन्त्रवादी पहलू अपने पाठकोंके सामने रखा और अपने नबीको एक पेशवा, लगभग एक नये राष्ट्रके प्रेसिडेंटका-सा, दर्जा दिया—एक श्रेष्ठ मानवका, देवताका नहीं, एक ऐसे मनुष्यका, जो अपने अनुयायियोंको स्पष्ट समझाकर कहता है कि 'मेरी हदसे रुतबा न मेर बढ़ाना ...;'

> नहीं बन्दा होनेमें कुछ मुझसे कम तुम,
> कि बेचारगीमें बराबर हैं हम-तुम।
> मुझे दी है हक़ने बस इतनी बुज़ुर्गी
> कि बन्दा भी हूँ उसका औ' एलची[1] भी।

हालीने अपनी रचनामें कहीं भी व्यक्तिको समाजमें पहला स्थान नहीं दिया, बल्कि साफ़ कहा कि—

> जमाअत[2] की इज़्ज़तमें है सबकी इज़्ज़त,
> जमाअतकी ज़िल्लत[3] में है सबकी ज़िल्लत।
> रही है न हरगिज़ रहेगी सलामत—
> न शख़्सी[4] बुज़ुर्गी, न शख़्सी हुकूमत।

'अहं' का भाव इस पूरे मुसद्दसमें कहीं नहीं उठता।

हालीमें किसी प्रकारकी साम्प्रदायिक संकीर्णताकी बू कहीं दूर तक भी हमें नहीं मिलती। ऐसी भावना उनके चरित्रके, जैसा हम उसे जानते हैं, विरुद्ध होती। नबीने धार्मिक संकीर्णता और विद्वेषसे अनुयायियोंको दूर रखा था, 'मुसद्दस' के शब्दों में, उसने—

> डराया तअस्सुब[5] से उनको य' कहकर
> कि ज़िन्दा रहा औ' मरा जो इसीपर
> हुआ वह हमारी जमाअतसे बाहर;
> वो साथी हमारा न हम उसके यावर[6]।
> कहा—है य' इस्लामियोंकी अलामत[7]
> कि हमसाये[8] से रखते हैं वो मोहब्बत।
> वो जो हक़से अपने लिये चाहते हैं,
> वही हर बशरके लिये चाहते हैं।

जब हम पूरी रचनाको देखते हैं तो उसका संगठन अद्भुत रूपसे पुष्ट जान पड़ता है। कोई एक भाव बिलकुल उसी रूपमें दोहराया नहीं गया। पूरी कविताकी

---

१. दूत। २. संघ, समाज। ३. अपमान। ४ व्यक्तिकी। ५. धार्मिक असहिष्णुता। ६. मददगार। ७. पहचान। ८. पड़ौसी।

लड़ियाँ आपसमें इस तरह गुथी हुई हैं, कि अगर एकको भी तोड़कर अलग करें तो पूरी कविताका सौन्दर्य उसी परिमाणमें टूटता और बिखरता है। एक-एक बन्दकी लड़ी भी स्वयं पूरी शृंखलामें बँधी रहकर ही अपना पूरा चमत्कार और प्रभाव दिखाती है। किसी कलात्मक रचनाकी सफलताकी शायद सबसे बड़ी कसौटी यही है कि उसके सब जोड़-बन्द इस तरह एक-दूसरेसे मिले हुए चले जायँ कि वह एकाएक महसूस न हों। इस दृष्टिकोणसे यह पूरा "मुसद्दस"—('रुबाई'), 'मुसद्दस' 'ज़मीमा' (परिशिष्ट); बल्कि 'दुआ'* को भी मिलाकर—एक प्रबन्ध-काव्य नहीं, एक 'लिरिक' काव्य है। इसका वही रस-सौन्दर्य है जो एक सरस दोहेका होता अथवा एक शे'र या 'सानेट' का माना जाता है, अर्थात् सम्पूर्ण रचनामें भावोंकी आन्तरिक एकताकी सहज परिव्याप्ति; जैसे संगीतके रागमें होती है।

हाली यूनानी, शेष यूरोपीय, और अंग्रेज़ी साहित्यकी ऐतिहासिक रूप-रेखा और उनकी विशिष्ट रचनाओंसे परिचित थे और अपनी रचनाओंकी भाव-भूमिको प्रशस्तरूपसे उदार और आधुनिक बनानेमें उस ज्ञानसे उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया था।

उनकी रचनाओंमें—इस मुसद्दसमें तो और भी—अपने देश और अपनी जातिसे ही नहीं, संसारकी समस्त जातियों और देशोंसे उनका स्वाभाविक प्रेम झलकता है; उनकी उन्नतिसे ईर्ष्याका नहीं, स्पर्धाका भाव उनमें जोश मारता है। एक स्थानपर वह कहते हैं, कि अगर कोई ऐसा ऊँचा टीला हो कि वहाँसे सारी दुनिया नज़र आती हो, और फिर उसपर एक ज्ञानी चढ़े 'कि क़ुदरतके दंगलका देखे तमाशा,' तो—

वह देखेगा हरसू[1] हज़ारों चमन वाँ :
बहुत ताज़ातर सूरते-बाग़े-रिज़वाँ;[2]
बहुत उनसे कमतर, प' सरसब्ज़ो-ख़न्दाँ;[3]
बहुत, ख़ुश्क औ' बेतरावत—मगर, हाँ,
नहीं लाये गो बर्गो-बार[4] उनके पौदे,
नज़र आते हैं होनहार उनके पौदे।

इस पूरे बन्दके लहजेमें संसारकी विभिन्न जातियोंसे हालीका वही प्रेम टपकता है जो एक पुराने मालीका अपने उद्यान से होता है।

देश-प्रेम निस्सन्देह हालीमें कूट-कूट कर भरा था। 'हुब्बे-वतन' नामक अपनी मशहूर कवितामें, जो आजसे सत्तर साल पहले लिखी गयी थी, वह स्वदेशसे, अपने 'सर्वोच्च स्वर्ग' से, पूछते हैं :

ए वतन, ए मेरे बहिश्ते-बरीं !
क्या हुए तेरे असमानो-ज़मीं !

(अगले अंकमें समाप्य।)

---

१. हर तरफ़। २. स्वर्गके उद्यानके समान। ३. हरे-भरे, हँसते हुए। ४. पत्ते और फल।
* ताज संस्करण

अरुणोदय

विष्णु

जैसा कि सदा होता था, निशिकान्तके तीव्र स्वरका उनपर तनिक भी असर नहीं हुआ। उन्होंने बड़ी शान्तिसे फ़ाइल उलटते हुए कहा–'बाबू निशिकान्त, आप युवक हैं, आपके लहूमें गरमी है, किसी दिन मैं भी युवक था, मेरे लहूमें भी गरमी थी। सच कहता हूँ, गोरे अफ़सरका अत्याचार देखकर मैं काँप उठता था। जीमें आता था कि उसके हाथसे कोड़ा छीनकर उसे ही पीटना शुरू कर दूँ। वह सलामका भूखा था। सड़कपर चलते समय जो भी उसे सलाम न करता उसीपर वह बेरहमीसे कोड़े बरसाने लगता। यही देख और सुनकर मैं क्रोधसे भर उठता था। मैं चाहता तो उसे पीट सकता था, मुझमें शक्ति थी, परन्तु ... परन्तु बाबू निशिकान्त! मैं ऐसा करता, तो क्या तुमसे बातें करता होता? मुझे जेल होती, सम्भवतः मार दिया जाता, और मेरे बच्चे, मेरी स्त्री, मेरा सारा परिवार दर-दरका भिखारी होता ...।'

निशिकान्तने दाँत पीस लिये, कहा कुछ नहीं। वे ही कहते रहे। वे लगभग पचास वर्षके थे, परन्तु बाल अभी तक काले थे, आँखें चमकती थीं। इसी दफ़्तरमें अपनी नौकरीके पच्चीस वर्ष पूरे कर चुके थे। उनका नाम था बाबू हरिचन्द। हँसमुख, प्रेमी और मिलनसार। कभी क्रोध नहीं आता था और जिन्हें क्रोध आता था उनको वे ऐसी करुणदृष्टिसे देखते कि क्रोधी पानी-पानी हो उठता था। समयकी उन्हें विशेष चिन्ता नहीं थी। सबसे पहिले आते और लौटते तो रात पड़ जाती। सदा यही कहते, ग़ुलामी पाप है, पीस देती है, परन्तु क्या करें, भगवानकी यही इच्छा है। वह चाहेगा तभी कुछ होगा। अब भी उन्होंने कहा, 'धीरे-धीरे सब कुछ ठीक हो जावेगा। समय सब कुछ करा लेता है। आज तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई गोरा किसी हिन्दुस्तानीको गाली दे सकता है। कोड़े मारना तो दूरकी बात है।'

निशिकान्तका सब्र जवाब दे रहा था, उसने तीव्रतासे कहा—'समय कुछ नहीं करता, उससे कराया जाता है।'

'हाँ, हाँ'–बाबू हरिचन्दने कहा–'ठीक है, कराया जाता है। भगवान सब कुछ करा लेते हैं।'

'आह! भगवान नहीं, आदमी कहिये, आदमी, बाबू साहब।'

'आदमी? आदमी ही कह लीजिये! भगवान उसीके द्वारा सब कुछ करा लेते हैं। वह भगवानके हाथका यन्त्र है......।'

'यन्त्र... !'—निशिकान्तका मन घुटने लगा, धुआँ जैसे छातीसे उठकर मस्तिष्कमें भर चला हो, परन्तु वह क्या कहे और किससे कहे! इसीलिये मन मार

कर वह भी फ़ाइलोंमें उलझ चला, लेकिन कहते हैं 'शक्करख़ोरेको शक्कर और मूँजीको टक्कर' सब जगह मिल जाती है। उसने फ़ाइल उठायी और बाबू हरिचन्दके पास आकर बोला–'आप समयकी बात कह रहे थे, मुझे बताइये मैं क्या करूँ?'

परम शान्त मुद्रामें वे मुस्कराये–'क्या बात है?'

'बात क्या होती, वही मँगला चपरासीकी ग्रेचुइटीका केस है। तीन वर्षसे बड़े दफ़्तरमें पड़ा हुआ है। और अब वे कहते हैं कि इसे समाप्त कर दीजिये।'

'जी!'

'यह केस समाप्त हो चुका है।'

'क्योंकि बड़े दफ़्तरके बाबुओंकी ऐसी ही इच्छा थी।'

निशिकान्तको फिर तैश आने लगा। उसने कहा–'मैं जानना चाहता हूँ कि उनकी इच्छाका इतना मूल्य क्यों है?'

बाबू हरिचन्द फिर मुस्कराये और बोले–'बाबू निशिकान्त, बड़े दफ़्तरके बाबू बड़े हैं। वे हमारे अन्नदाता हैं, हमारे भाग्यके निर्णायक हैं, उनकी क़लम क्षण भरमें हमारी उन्नतिको अवनतिमें पलट सकती है। तुम कारणकी बात कहोगे परन्तु भैया! कारण ढूँढ़ निकालना कोई कठिन काम नहीं। [सहसा धीमा स्वर कर लेते हैं:] और निशिकान्त, अब तुम्हारा मामला है। वे चाहें तो तुम्हें सीनियर बना दें, चाहें तो उस्मानको। सीनियर होते ही नया ग्रेड मिलता है, वेतन बढ़ता है। ऐसी अवस्थामें कौन मूर्ख होगा जो उनका विरोध करके अपने उज्वल भविष्यका नाश करेगा।'

निशिकान्तने लापरवाहीसे कहा–'मुझे अपने भविष्यकी चिन्ता नहीं है। उसके लिये मैं अपने ऊपर विश्वास करता हूँ, दूसरेपर नहीं।'

'तब तुम मूर्ख हो,' जवाब मिला।

'हो सकता है'–निशिकान्तने कहा–'परन्तु इस केसको समाप्त करनेसे एक ग़रीब परिवारकी आशाओंपर तुषारपात होता है। जब आप भविष्यको बिगाड़ने और सुधारनेकी बात कहते हैं तो क्या यह नहीं सोचते कि ग़रीबकी आहमें बड़ी शक्ति होती है, वह भविष्यकी उज्वल रेखाको तनिक सी देरमें काली कर सकती है?'

बाबू हरीचन्दने उसी शान्तिसे कहा–'लेकिन बाबू निशिकान्त, आप क्यों डरते हैं? अगर किसीके भविष्यकी उज्वल रेखा काली होगी तो वह बड़े दफ़्तरके बड़े बाबुओंकी होगी, हमारी नहीं। सच मानो, हमें उन लोगोंके भविष्यकी जरा भी चिन्ता नहीं है।'

यह कहकर उन्होंने निशिकान्तकी ओर अद्भुत मुद्रासे देखा। उनके मुखपर हँसी झलक आयी थी। वह हँसी जो मात्सर्य्य, व्यंग्य और विजयसे पूर्ण थी, मानो कहते थे–निशिकान्त! सच मानो, बड़े दफ़्तरके बड़े बाबुओंसे हमें बड़ी नफ़रत है। उनके पतनसे हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। इसीलिये ऐसे कारणोंको रोकनेकी हम जरा भी चेष्टा नहीं करते।

निशिकान्तने सब कुछ देखा और समझा। उसका मस्तिष्क चकराने लगा। उसे नौकरी करते हुए पन्द्रह साल बीत चुके थे परन्तु न जाने क्यों इधर वह चिन्तित और व्यग्र होता आ रहा था। ऐसी सब बातोंसे उसे घृणा होने लगी थी और वह इस दम घोटने वाले वातावरणसे दूर, बहुत दूर भाग जाना चाहता था, लेकिन......

बस यही 'लेकिन' उसके रास्तेका रोड़ा बनकर अटका पड़ा था। इस 'लेकिन'में आदर्शके लिये जीविका छोड़नेका प्रश्न था। उस भाविष्यका प्रश्न था जहाँ सरकारकी पेन्शन पाकर बुढ़ापेमें आराम और आसाइशका जीवन बिताया जाता है, परन्तु यह भविष्य केवल शारीरिक ही नहीं, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रताका हनन करके प्राप्त किया जाता है। मानो मनुष्य मनुष्य नहीं है। न उसमें चेतना है, न बुद्धि है। न उसकी आशाएँ हैं, न आकांक्षाएँ, बस वह केवल यन्त्र मात्र है......

कि सहसा उसे याद आ गया, उसके साथीने अभी-अभी कहा था—मनुष्य भगवानके हाथ का यन्त्र है, और भगवान जो कुछ भी चाहते हैं मनुष्यको करना पड़ता है। उसके मनने तर्क किया—लेकिन भगवान क्या चाहते हैं इसका निर्णय कौन करता है?

उत्तर भी स्वयं ही मस्तिष्कमें आ गया। जो कुछ होता है वही भगवान चाहते हैं। यह उत्तर सोचकर उसे बड़ी भयानक हँसी आ गयी। उसने फ़ाइलोंको परे सरका दिया। कुरसी पीछे हटायी और पैर मेज़पर रखकर लुढ़क गया। हाँ, तो, जो कुछ होता है वही भगवान चाहते हैं, और जो भगवान चाहते हैं वही होता है। मनुष्य तो उसके हाथका यन्त्र है, जिधर चाहा जैसे चाहा, घुमा दिया......।

कि छोटे बाबूने आकर कुछ काग़ज़ उसके सामने फेंक दिये, बोले, 'देखो।'

'क्या है?'

'तुम्हारा केस है, और बड़े बाबूने जो कुछ लिखा है वह तुम्हारे विरोधमें जाता है।'

'जाने दो, मुझे उसकी चिन्ता नहीं है।'

'लेकिन यह उसकी नीचता है। वह इस प्रकार मुसलमानोंका भला बनना चाहता है।'

'पर यह उसकी भूल है। वे लोग इसे निकालकर दम लेंगे।'

निशिकान्त सब कुछ समझ रहा था। उसने धीरेसे कहा, 'मैं समझता हूँ उनका यह विश्वास है कि उस्मान मुझसे सीनियर है।'

'नहीं, यह निश्चयसे नहीं कहा जा सकता कौन सीनियर है। बात केवल बड़े दफ़्तरके रूलिंग (निर्णय) की है। ऐसी अवस्थामें उसका कर्तव्य है कि वह तुम्हारा पक्ष ले।'

'क्यों?'

'क्योंकि तुम हिन्दू हो और क्योंकि मुसलमानोंने हम लोगोंपर अत्याचार करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखा है। प्रान्तीय स्वशासनके बाद तो उन्होंने नौकरियोंपर एक प्रकारसे धावा बोल दिया है।'

निशिकान्त सहसा बोलते-बोलते रुक गया। वह हिन्दू है और उसके हिन्दूपन को लेकर ही ये सब बाबू उससे सहानुभूति प्रकट करने आये हैं। इसलिये कोई ऐसी बात कहना जिससे उनका मन दुखी हो ठीक न होगा।

—कि छोटे बाबू फिर बोल उठे : 'तुम लाहोर क्यों नहीं जाते?'

'लाहोर...?'

निशिकान्त अब चुप नहीं रह सका। उसने दृढ़तासे कहा—'नहीं। मैं कहीं नहीं जाऊँगा। अगर मेरा पक्ष प्रबल है तो मुझे किसीके आगे हाथ पसारनेकी ज़रूरत नहीं है और अगर उस्मानका पक्ष ठीक है तो उसे सीनियर बनाना ही चाहिये। मुझे इस बातका तनिक भी दुख नहीं होगा।'

छोटे बाबू कच्ची गोली नहीं खेले थे। बोले–'तुम्हें दुख नहीं होगा लेकिन हमें तो होगा। आजकी दुनियामें न्याय चुपचाप बैठनेसे नहीं मिलता। जानते नहीं वह कितनी कोशिश कर रहा है, कितने अफ़सरोंसे मिल चुका है?'

'सब कुछ जानता हूँ, यहाँ तक कि उसने अपना आदमी लाहोर भेजा है।'

'तो फिर...?'

'तो फिर यही कि शायद उसे अपने पक्षकी निर्बलताका विश्वास है।'

'बेशक उसका पक्ष निर्बल है, लेकिन कोशिश करके वह उसे प्रबल बना लेगा। तुम न्यायकी बाट देखते रहना। परन्तु हम यह नहीं होने देंगे। बात केवल निशिकान्तकी नहीं है, हिन्दू-मुसलमानकी है।'

और इतना कह कर वे चले गये। निशिकान्तने फिर चिट्ठियोंको सँभाला। सामने डाकका ढेर लगा था। उसे सबपर टिप्पणियाँ लिखनी थीं। उसने क़लम उठायी और लिखना आरम्भ कर दिया, लेकिन मस्तिष्क......वह तो कामसे दूर, बहुत दूर, उसके भविष्यकी चिन्तामें लगा था। निशिकान्त किसी भी तरह उसे शान्त न कर सका। उसने सोचा, यदि मैं सीनियर हूँ तो वे रोकते क्यों हैं? क्या मनुष्य सचमुच इतना गिर गया है कि वह स्वार्थके लिये न्यायका गला घोंट दे? नहीं, नहीं, परमेश्वर यदि है तो ऐसा नहीं होगा। वह कभी अन्याय नहीं होने देंगे......कि सहसा धक्का लगा–परमेश्वर! कैसी मूर्खताकी बातें हैं? ईश्वर-परमेश्वर कहीं कुछ नहीं है। मनुष्य जब निर्बल था, तब ईश्वरका जन्म हुआ था। वह मनुष्यकी निर्बलताकी स्वीकारोक्ति मात्र है। पर आज तो मानव शक्तिशाली है। उसने प्रकृतिको जीता है। उसे अब परमेश्वरकी ज़रूरत नहीं है...

कि तभी एक दूसरे मित्र आये और धीरेसे बोले—'कुछ सुना तुमने?'

'क्या?'

'रात मस्जिदमें मीटिंग हुई थी।'

'किनकी?'

'उन्हीं लोगोंकी। डिप्टी, ओवरसियर, स्टोरकीपर सभी थे। तुम्हारे हम-वतनी भी थे। डिप्टी साहबने साफ़ कह दिया कि अगर निशिकान्तको स्टोरकीपर बनाकर भेजा तो मैं एक महीनेमें नालायक़ करके निकलवा दूँगा। इसपर स्टोर-कीपरने कहा—'जी, निशिकान्त आसानीसे नालायक़ होनेवाला नहीं है। जूनियर होकर भी उलझे हुए केसोंपर वही टिप्पणी करता है।'

डिप्टी साहब तब मुस्कराये, बोले–'चोरीके इलज़ाममें डिसमिस कर देना तो मामूली बात है।'

'सच, ऐसा कहा उन्होंने?' निशिकान्तने अचरजसे पूछा।

'हाँ।'—मित्र विजय-गर्वसे भरकर बोले।

'बड़े दुष्ट हैं।'

'देख लो। तुम इनकी प्रशंसा करते नहीं थकते और वे हैं कि तुम्हारी जड़ काटनेके लिये कटिबद्ध हैं।'

निशिकान्त मुस्कराया। 'जड़ कौन किसकी काट सका है? जो ऐसा सोचते हैं, मूर्ख हैं, परन्तु......।'

साथी बीच ही में बोल उठे: 'मूर्ख तुम हो, निशिकान्त। तुम्हें समय रहते चिन्ता करनी चाहिये। मेरा काम तुम्हें चेतावनी देना था। और मुझसे तुम्हारी कोई सहायता हो सकती हो तो मैं तैयार हूँ।'

'आपकी कृपा है, मुझे आपपर भरोसा है।'

साथी मुस्कराकर चले गये और मस्तिष्कके बवंडरको रोकनेमें असमर्थ निशिकान्त फिर चिट्ठियोंपर झुका। बीचमें कई बार बड़े बाबूने बुलाया, साहबने सलाम भेजा, साथी केस पूछने आये और गये। दफ़्तरका काम तेज़ीसे होता रहा और उसकी विचारधारा भी तेज़ीसे बहती रही कि सन्ध्या होते-होते उस्मान अजीब अदासे मुस्कराता हुआ आया। बोला—'अरे भई निशिकान्त' सुना वह केस फिर आ गया है।'

निशिकान्त भी मुस्कराया। 'कौनसा केस?'

'वही मेरा और आपवाला।'

'तब।'

'क्या लिखाहै?'

'सरविस-बुकें माँगी हैं।'

'यार, तुम्हारी जीत है।'

'कैसे?'

'पर्सनल असिस्टेंट सिख है।'

सहसा निशिकान्त उठ खड़ा हुआ और पूर्ण विश्वासके साथ उसने उस्मानको देखते हुए कहा—'मैं मानता हूँ, तुम मेरा विश्वास नहीं करोगे। इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। परिस्थिति ही ऐसी है, परन्तु मैं दिलकी बात कहता हूँ। मैं न्यायसे ऊँचे पदका हक़दार हूँ तो ठीक है अन्यथा मैं सपनेमें भी तुम्हें गिरानेकी बात नहीं सोच सकता। तुम्हें क्या, किसीको भी नहीं। मैंने आज तक साहबसे इस बातका ज़िक्र तक नहीं किया, जबकि तुम जानते हो उन लोगोंसे मेरे सम्बन्ध कितने गहरे और मीठे हैं। मैं अपने लिये किसीके आगे हाथ फैलानेसे भूखा मर जाना कहीं अच्छा समझता हूँ। इन्सान इन्सानके आगे हाथ फैलाये, इससे गन्दी बात और हो ही क्या सकती है?'

निशिकान्तका स्वर इतना स्पष्ट और बेलाग था कि कोई भी निष्पक्ष आदमी उसकी ईमादारीसे इनकार नहीं कर सकता था। उस्मान मुस्कराया, उसकी आँखें चमक उठीं। क्षण भरके लिये विश्वासने मानो अविश्वासको पराजित कर दिया हो। उसने कहा—'सच, निशिकान्त! मैं भी यही चाहता हूँ।'

और फिर सहसा बातको आगे बढ़ाये बिना वह चला गया। निशिकान्तका मन भर आया था। क्षण भर उसने जाते हुए उस्मानको देखा, फिर जल्दी-जल्दी चेट्ठियाँ छाँटने लगा। ६ बजने वाले थे और उसका मन काम करनेको नहीं कर रहा ा। उसने दफ़्तरीको पुकारा—'मैं जा रहा हूँ। कमरा बन्द कर दो।'

और वह लौट चला। चलते-चलते विचारोंका एक तुमुल प्रवाह मस्तिष्कमें भर आया। कुछ पुरानी बातें नयी होकर सामने आ गयीं। उस दिन वह पत्नीके साथ हरके किनारे घूम रहा था। वातावरणमें मस्ती थी; उनके मनमें, उनकी बातोंमें मस्ती ी। प्रेम और मोहब्बतकी बातें करते-करते वे भविष्यके सुनहरे सपने देखने लगे थे, के सहसा निशिकान्तका मन विषादसे भर उठा। उसने दर्द भरे स्वरमें कहा—'रजनी, सी अचरजकी बात है! मुझे नौकरी करते हुए बारह वर्ष बीत गये, परन्तु मैंने क क्षणके लिये भी इसे पसन्द नहीं किया। मैं इसे अपने जीवनका श्राप समझता हूँ! प्रति क्षण यहाँ मनुष्य मनुष्यका गला घोंटता रहता है। प्रति क्षण दासताकी कड़ियाँ कसती रहती हैं। प्रति क्षण हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच, जाट-बनिया, सिख-असिख पंजाबी-नॉनपंजाबी, ब्राह्मण-बनियाके रूपमें मनुष्यकी नीचता, तृष्णा और घृणा फूलती-फलती रहती है।'

रजनीने पतिकी ग्लानिको अनुभव किया, बोली, 'ऐसी बात है तो नौकरी क्यों नहीं छोड़ देते।'

निशिकन्त मुस्कराया। 'मैं भी यही पूछा करता हूँ, मैं नौकरी छोड़ क्यों नहीं देता। परन्तु, रजनी, पेटकी पुकार रस्तेका रोड़ा बन जाती है। जो हितैषी हैं वे पूछ बैठते हैं—करोगे क्या? देखती आँखों आजकी दुनियामें भरी-पूरी रोज़ीको लात मारना मूर्खताकी सीमा है।'

'लेकिन,' रजनी बोली, 'आपको भी पेटकी चिन्ता है! आप तो लिखते हैं।'

'लिखता हूँ, पर लिखनेसे पेट नहीं भरता। पूँजीपतियोंके देशमें लेखककी दशा मज़दूरसे भी बदतर है।'

'अपना कुछ काम कर लो।'

'उसके लिये पूँजीकी आवश्यकता है।'

रजनीने क्षण भर सोचा, बोली, 'मेरे पास जो गहने हैं उन्हें बेच दो। युद्धके कारण सोना तेज़ है। जब कभी सस्ता होगा, बन जावेंगे। और न भी बने तो क्या उनके बिना जिया नहीं जाता!'

तर्क इसी तरह आगे बढ़ता गया और जैसा कि तर्कका गुण है, बिना किसी निर्णयके समाप्त हो गया, और निशिकान्तको फिर अम्माकी बातें याद आ गयीं। वह सदा हवामें बोलती है—छोड़ दे नौकरी। अपने घर चल। भूखा कौन मरता है। भगवान सबको देते हैं।

निशिकान्त तर्क करता—नहीं अम्मा! भगवान उन्हींको देते हैं जो मेहनत करते हैं।

—तो तू क्या लुंजा है या लँगड़ा? इतना पढ़ा है। यहाँ नहीं मन लगता तो स्कूलमें नौकरी कर ले।

निशिकान्त हँसकर रह जाता। और यही अम्मा दूसरे दिन कहती—ना, बेटा! नौकरी नहीं छोड़ा करते। दुनिया भूखी मर रही है। लोग नौकरीके लिये तरसते फिरते हैं और तू लगी-लगायी छोड़ना चाहता है! इस नौकरीके कारण ही तेरी और तेरे कुटुम्बकी इज़्ज़त है। दुनिया कहती है—लायक़ बेटा है, कुटुम्बको सँभाल रखा है, नहीं तो...नहीं तो...

अम्माको पुरानी बातें याद आ जाती हैं। आँखोंसे टप-टप आसू टपकने लगते हैं। निशिकान्त न मुस्कराता है न रोता, केवल शून्यमें खोया-खोया देखने लगता है। भावुकता उसमें भी है। माँकी बात चुभती है। पर वह जानता है कि जो कुछ उसके हृदयमें है वह न माँ समझती है और न पत्नी। उसका हृदय देशकी परतन्त्रतापर कलकता है। वह सोचता है--मेरा देश, करोड़ों नर-नारियोंका देश, पराजित क्यों है? क्या हम लोग विदेशी पदाक्रान्त करनेवालोंका साथ छोड़ दें तो उनकी मशीन ठप्प न हो जावेगी? क्या वे सदा शक्तिका प्रयोग कर सकते हैं? और क्या दो-चार हज़ारके मर जानेसे कोई देश मर सकता है? क्या जन-शक्तिसे बढ़कर कोई शक्ति है?......प्रश्न तीखे हैं। उसके अपने हृदयको छेद देते हैं। वह बहुत सोचता है। आखिर क्यों...? उत्तर मिलता है—क्योंकि जनताने अभी अपने आपको समझा नहीं। वह आज़ादी और ग़ुलामीका भेद नहीं जानती। जिस दिन जान जायगी उस दिन देखेगी, हमने अपने हाथोंमें आप ही हथकड़ी डाल रखी है और कि हम स्वयं ही उन्हें उतार

कर फेंक सकते हैं। यही बात उसने एक दिन बड़े मनोयोगसे रजनीको समझायी। रजनी! जिस दिन तुम समझोगी कि तुम गुलाम हो, उसी दिन तुम्हें मेरे मनके द्वन्द्वका पता लग जावेगा। उस दिन तुम स्वयं बन्धन खोलनेको आतुर हो उठोगी। बात केवल समझनेकी है। देश गुलाम है लेकिन हम आपसमें लड़ते हैं पदके लिये, लिप्साके लिये। सोचते नहीं, आज़ादीके सामने सब गौण है।

रजनी बोली, 'आप ठीक कहते हैं, परन्तु आज़ादीके लिये जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनसे जनता डरती है। भूखकी तो कल्पना भी कँपा देती है।'

निशिकान्त हँसा—'भूख! रजनी, संसारमें भोजनकी कमी कभी थी न कभी होगी। बात केवल इतनी है कि वह कुछ थोड़ेसे हाथोंमें चला गया है। उसे छीन लेना हमारा काम है।'

'लेकिन कैसे?'

'उसके लिये जो समझदार हैं उन्हें रास्ता दिखाना पड़ेगा।'

और यही सोचकर निशिकान्त सहसा हर्षसे भर उठा। ठीक तो है, मैं इतना समझता हूँ, मुझे रास्ता दिखाना चाहिये। मेरा और उस्मानका झगड़ा है। मैं आगे बढ़ गया तो क्या होगा? वेतन बढ़ जावेगा, परन्तु साथ ही गुलामीकी ज़ंजीरें भी दृढ़ होंगी। मैं गुलामीसे घृणा करता हूँ। मुझे कह देना चाहिये मैं उस्मानको सीनियर स्वीकार करता हूँ......परन्तु मैं कौन?...रास्तेमें सरकार है, मेरे साथी हैं...। साथी कहेंगे—कायर! कृतघ्न! हिन्दू जातिके माथेपर कलंकका टीका लगाना चाहता है। शेर जालमें फँसा है, उसे मुक्त करना चाहता है। शेर शेर है। मुक्त होनेपर तुम्हें न भी खाये, पर हम तो हैं...। तो...? उसका मस्तिष्क चकराने लगा। उसे कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। उसका कोई मित्र नहीं था। जो थे वे हिन्दू थे, सम्बन्धी थे, या विरोधी थे। सभी जाति-द्वेष, वर्ग-द्वेष, और मानवताके प्रति घृणासे भरे हुए थे। वे सब कायर और कमीने थे......

धीरे-धीरे निशिकान्तपर भी यही कायरता छाने लगी। मैं क्यों पैदा हुआ, मेरा क्या मूल्य है? मैं क्या कर सकता हूँ? मेरे पास न शक्ति है, न सम्पन्नता, न सौन्दर्य, न पारिवारिक महानता। मुझमें प्रतिभा भी नहीं है जो महान लेखक ही बन सकूँ। तो मैं किस योग्य हूँ?......

किसीने पुकारा—'बाबू निशिकान्त।'

चौंककर देखा, पोस्टमैन था—'बाबू निशिकान्त, आपकी चिट्ठी है।'

'लाइये।'

'दो अखबार और एक लिफ़ाफ़ा।'

लिफ़ाफ़ा रजनीका था। वही चिर-परिचित अक्षर! खोलकर पढ़ने लगा। सदाकी भाँति उसने लिखा था—

प्रियतम प्राणेश्वर !

आपका प्रेम-पत्र आया। पढ़कर न जाने क्यों मन भर आया। आप इतने दुखी क्यों रहते हैं ! आप जैसे योग्य आदमी भी तड़पते रहे तो कैसे होगा ? बुद्धि आपको मिली है, आप लेखनीके स्वामी हैं। क्या कोई भी गुणग्राहक नहीं है ? और फिर न भी हो। आत्मविश्वास बहुत बड़ी चीज़ है।......नौकरीमें मन नहीं लगता तो सच कहती हूँ छोड़ दीजिये। आप भूखे नहीं रह सकते, फिर मैं भी तो हूँ। पेट भरने जितना तो मैं भी कमा सकती हूँ। और सबसे अच्छा तो यह है कि हम दोनों अपना एक स्कूल चलावें। अक्षर-ज्ञानके साथ-साथ विद्यार्थिओंको आत्मज्ञान भी आप दे सकेंगे। क्यों ठीक रहेगा न ?

पर कुछ भी हो दुखी न रहिये। उससे क्या समस्या हल होगी ? मुनिया प्रसन्न है। सदा बागीचेमें फूल तोड़ती रहती है। अपको नमस्ते लिखाती है।...............

आपकी ही
रजनी

निशिकान्तने पत्र पढ़ लिया। मानो पूर्वमें प्रकाशकी किरणें फूट पड़ी हों। क्षण भरमें मस्तिष्ककी अशान्ति दूर हो गयी। शब्द सीधे थे, पर उनके पीछे एक मार्ग था, मानो कृष्णने अर्जुनको चेतावनी दी थी—भविष्य उन्हींका है जो निःशंक हैं; मानो रजनीने निशिकान्तको बताया था: दुविधा मौत है। भविष्यका निर्माण हमारे हाथमें है। भविष्य हमारा निर्माण नहीं करता।

हाँ, निशिकान्त ने कहा, ठीक है: मैं भविष्यका निर्माता हूँ। भाग्य मेरे हाथमें है। मैं अब इस चक्कीमें नहीं पिसूँगा। मै त्यागपत्र दूँगा ... त्यागपत्र ... ! हाँ, मैं त्याग-पत्र दूँगा। मुझे मुक्ति मिलेगी। मैं खुलकर उन कारणोंसे लड़ सकूँगा जिनके कारण ये प्राणघातक परिस्थितियाँ पैदा हो गयी हैं। मैं जड़पर प्रहार करुँगा और जड़ है गुलामी चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक या सांस्कृतिक। गुलामी गुलामी है। मैं उर स्वीकार नहीं करूँगा।

और सचमुच अगले दिन सवेरे जाते ही उसने त्यागपत्र दे दिया। दफ़्तरमें जैसे विस्फोट हुआ हो। स्तीफ़ा ! आजकी दुनियामें स्तीफ़ा ! सरकारी नौकरीसे स्तीफ़ा ! पन्द्रह वर्षकी नौकरीसे स्तीफ़ा !

टाइपिस्टने नेत्र बिस्फारित कर कहा--'बाबू निशिकान्तने स्तीफ़ा दे दिया !'
अकाउन्टैन्ट चौंका --'स्तीफ़ा !'

सीनियर बाबूने पहले तो अचरजसे देखा, फिर गम्भीरतासे कहा–'तुमने ग़लत सुना है। कोई और बात होगी।'

'नहीं, नहीं'--टाइपिस्टने कहा—'मैंने स्वयं देखा है, बड़े बाबू उन्हें समझा रहे थे।'

'तब क्या कहा उसने?'

'यही कि मैने स्तीफ़ा दिया है, मैं उसे वापिस नहीं लूँगा।'

'नहीं लूगाँ?'–एकाउन्टैंटने व्यगंसे कहा–'रात बड़े बाबूसे लड़ा था, वही जोश है। साहबके सामने जाते ही दूर होजाएगा।'

'जी हाँ, आप ठीक कहते हैं। माना, बड़े बाबू बत्तमीज़ हैं, पर इसका क्या यह मतलब कि नौकरी छोड़ दी जावे? यह तो बुज़दिली है।'

'एकदम बुज़दिली।'

'अजी साब! मैंने भी स्तीफ़ा दिया था। स्टन्ट है, केवल स्टन्ट। देख लेना शाम तक वापिस ले लेंगे।'

कि तभी आ गये बाबू हरिचन्द। अचरजसे सबको देखा, बोले—'क्या बात है?'

'आपने नहीं सुना!'

'नहीं।'

'आपके साथी बाबू निशिकान्तने स्तीफ़ा देदिया।'

'स्तीफ़ा दे दिया...?'

'जी, दे दिया।'

'तो स्तीफ़ा दे दिया उसने......?'

....

'मैं जानता था वह स्तीफ़ा देगा। सच तो यह है, उसे स्तीफ़ा देना ही चाहिये था।

'क्यों?'—कई बाबू एक साथ अचरजसे बोले।

'क्योंकि वह शेर है।...'

फिर सहसा रुक, धीरे-धीरे छड़ीको घुमाकर बोले--'एक दिन मैं भी शेर बनने चला था, परन्तु मेरा भाग्य! भेड़ बनकर रह गया। हम सभी भेड़ हैं। हम जानते हैं कि हम ग़ुलाम हैं परन्तु रोज़ कुत्तोंकी तरह लड़ते हैं और मालिकके अत्याचारको न्यायोचित ठहराते हैं। हम अपने घरमें बिराने हैं। हम अपनी भाषा नहीं बोल सकते, हम अपने वस्त्र नहीं पहन सकते, हम अपनी बात नहीं कह सकते। कहें भी कैसे? ऊँटने सारा तम्बू घेर लिया है। उससे लड़ेंगे तो तम्बू फट जावेगा।'

भावुकता हँसीमें पलट गयी: कहते रहे, 'तम्बू फट जावेगा? भले ही हमारा देश हमसे छिन जावे, परन्तु हम, हमारी बीवियाँ, हमारे बच्चे जीते रहें! ठीक है, भे की दृष्टि आँखोंसे आगे नहीं बढ़ती। जिसकी बढ़ जाती है वह शेर है। इसीलिये निशि कान्त शेर है।'

वे बोल रहे थे और दूसरे क्लर्क सहमे, सकपकाये, उन्हें देखते रहे। एक सोच रहा था–यह भी मूर्ख है! दूसरा समझता था–कहता तो ठीक है। तीसरेके मनमें दृढ़ विश्वास था–नहीं, यह बुजदिली है; अपनी जातिसे विश्वासघात है। चौथा प्रसन्न था–चलो, एक सीनियर आदमी गया। मेरी तरक्कीका रास्ता खुला।

बाबू हरिचन्द शीघ्रतासे निशिकान्तके पास पहुँचे और बोले: 'तो तुमने व्यूह तोड़ डाला। शाबाश, तुमने दिखा दिया कि भेड़े भी शेर बन सकती हैं। मुझे बड़ी खुशी है। तुम अकेले हो पर रास्ता दिखानेवाला सदा एक होता है और फिर हम लोगोंके शरीर भले तुम्हारे साथ न हो, मनसे हम सब तुम्हारी कामयाबीके लिये दुआ करेंगे।'

निशिकान्त इस प्रशंसाके लिये तैयार नहीं था। वह सहसा विचलित हो उठा। न सोच सका, न बोल सका, केवल अपलक सजल नेत्रोंसे बाबू हरिचन्दको इस प्रकार देखने लगा मानो उनके मुखपर उसके भविष्यमें होने वाला अरुणोदय स्पष्ट झलक उठा हो।

लेकिन शेष क्लर्कोंके लिये ये दोनों बाबू पहेली ही बने रहे।

डा. कोटणीसकी अमर कहानी : अपने ही शरीरपर प्रयोग करके उन्होंने नयी-नयी दवाइयाँ ईजाद कीं । [देखिये पृष्ठ ९४]

अमर भारत का एक नृत्य।

[देखिये पृष्ठ ०८]

नाटक और नृत्यकला :

'अमर भारत'

१२ से १९ अप्रैलतक स्थानीय "एक्सेल्सियार" में भारतीय जन नाट्य संघके केन्द्रीय नृत्य और संगीत दलने बम्बईके सहस्त्रों कला-प्रेमियोंको मंत्र-मुग्ध रखा।

बम्बई आनेके पहले लगभग तीन महीने तक पूर्वी और उत्तरी भारतका दलने दौरा किया था। कलकत्ता, बरहमपुर आसनसोल, गया, पटना, इलाहाबाद, लखनऊ, मेरठ, दिल्ली और लाहौरमें कुल मिलाकर उसने लगभग ७५ शो (प्रदर्शन) दिये। कलकत्ता, बरहमपुर, आसनसोल, इलाहाबाद, लखनऊ और लाहौरमें मजदूरोंके सामने अलग प्रदर्शन हुए। उत्तर और पूर्वी भारतका दौरा करनेके पहले दल अहमदाबाद गया था। वहाँके मजदूरों और नागरिकोंके सामने ५ दिन तक उसने नाच और गाना किया था।

इन सब प्रदर्शनोंके द्वारा जन नाट्य संघके सन्देशको दलने देशके लगभग सत्तर-पचहत्तर हजार लोगोंतक पहुचाया।

जन नाट्य संघका नृत्य और संगीत दल जहाँ भी गया वहाँ उसे नाम और यश मिला। 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड,' 'अमृत बाजार पत्रिका,' 'हिन्दुस्तान टाइम्स,' 'बाम्बे क्रानिकल,' 'बॉम्बे सेन्टिनल,' तथा अनेक अन्य अंग्रेजी, बँगला, हिन्दी और उर्दूके राष्ट्रीय पत्रोंने मुक्त कण्ठसे दलके कार्यकी प्रशंसा की।

'हिन्दुस्तान टाइम्स'ने लिखा :

> "जन नाट्य संघ जनताका सच्चा थिएटर है। राष्ट्रीय थिएटर बननेके सब गुण उसमें मौजूद हैं। देशके सांस्कृतिक नव-जागरणमें उसका बड़ा हाथ है। हरेकको उसकी सहायता करनी चाहिये।" —७ अप्रैल, १९४६

बंगाल, युक्त प्रान्त, दिल्ली, पंजाब, बम्बई आदिके कलाकारोंने दलके कार्य और दृष्टिकोणकी सराहना की। कलकत्तेमें देशके श्रेष्ठ चित्रकार श्री जामिनी रायने अपने स्टूडियोमें दलको आमन्त्रित करके सदस्योंके प्रति अपना स्नेह और आदर प्रकट किया। बम्बईमें श्री शान्तारामने दलके नृत्योंको देखकर कहा :

> "जन नाट्य संघके 'अमर भारत' तथा अन्य अभिनयोंको देखकर मैंने जाना कि हमारे गांवोंके जीवनमें कितनी कला, कितना सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। 'अमर भारत' को देखकर हृदय प्रेरणा और स्फूर्तिसे भर गया। उसके सन्देशसे किस देशभक्तका अन्तस्तल आन्दोलित न हो उठेगा?...अभिनेता और अभिनेत्रियाँ सब नौसिखिये हैं। किन्तु उनके कौशलमें उसका कहीं आभास तक नहीं मिलता। उनके नृत्यादि कलामय होनेके साथ-साथ उद्देश्यपूर्ण हैं। कलाकी सच्ची कसौटीपर वे पक्के उतरते हैं...प्रगतिशील कलाके वे आदर्श उदाहरण हैं...।"

डायरेक्टर शान्तारामने दलको ५००) भी भेंट किये।

हर स्थानपर तमाम दलोंके नेता भी प्रदर्शनोंको देखने आये। प्रयागमें श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डितने और दिल्लीमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्रीमती सरोजिनी

नायडूने नृत्यों और अभिनयोंको देखनेके बाद स्टेजपर आकर दलकी लड़कियोंको गलेसे लगा लिया। एक वक्तव्य देते हुए पण्डित नेहरूने कहा :

"जन नाट्य संघके प्रदर्शनको देखकर मुझे बेहद खुशी हुई। उसके संगठन-कर्ताओं और पात्र-पात्रियोंको मैं बधाई देता हूँ। इस सुकार्यमें वे हर प्रकारकी सहायता और प्रोत्साहनके अधिकारी हैं।"

दूसरी महत्त्वपूर्ण सम्मति विश्व मजदूर आन्दोलनके प्रमुख नेता श्री रजनी पामदत्तने दी जिससे हमें मालूम हुआ कि विदेशियोंकी दृष्टिमें प्रदर्शन कैसा था। इंगलिस्तानमें रहकर भारतीय आजादीके लिये श्री पामदत्त तीस वर्षसे लड़ रहे हैं। "आधुनिक भारत," "फ़ासिज़्म और सामाजिक क्रान्ति" आदि, उनकी पुस्तकों और "लेबर मन्थली," "डेली वर्कर" जैसे पत्रोंने भारतीय क्रान्तिकारियोंकी कई पीढ़ियोंका मार्ग-दर्शन किया है। "डेली वर्कर" को, जिसके सम्वाददाता बनकर ३० वर्षकी कोशिशके बाद वह भारत आ पाये हैं,तार भेजते हुए अपने लम्बे सन्देशमें उन्होंने लिखा :

> "पण्डित नेहरू और मैं संघके विशिष्ट अतिथि थे। .....ये लोग एक ऐसी कलाको जन्म दे रहे हैं जिसमें भारतके नृत्यों और संगीतकी प्राचीनतम परम्पराओंका आधुनिक युगकी नवचेतनाके साथ—स्वतन्त्र और सुखी भारतकी स्थापनाके लिये किये जाने वाले प्रयत्नोंके साथ—समन्वय किया गया है...
>
> "उसके संगीतके सौन्दर्य और वेश और प्रसाधनोंकी कलात्मकताको देखकर सुध-बुध खो जाती थी।... नाट्य नृत्य ('अमर भारत') देखकर तो किसी भी दर्शक-मण्डलीका हृदय आप्लावित हो उठेगा...
>
> "प्रदर्शनके बाद हम लोग थिएटरके पास ही जमीनपर बैठे थे। सड़कोंपरसे लोग जमा हो गये। उनमें झुर्रियोंदार चेहरेवाले बूढ़े और सड़कोंपर खेलते बड़ी-बड़ी ख़ूबसूरत आँखोंवाले छोटे-छोटे लड़के थे...गीतोंकी लयके साथ उनके सिर हिलने लगे। यह जाननेके लिये कि यह कला जनताकी है उनके चेहरोंको देख लेना ही काफ़ी था...
>
> "केवल संघके प्रदर्शनको देखनेके लिये भी इंग्लिस्तानसे मैं यहाँ आया होता तो भी आना सार्थक होता..."

ये बहुत बड़ी प्रशंसाके शब्द हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे सर्वथा सच्चे हैं। पिछले वर्ष दलने जब अपना कार्यक्रम उपस्थित किया था तो उसमें एक उद्देश्य था, उसके प्रत्येक अंग-परिचालनमें उज्वल देशभक्तिका सन्देश और प्रत्येक भाव-व्यञ्जनामें एकता और स्वतन्त्रताका आह्वान था। सौन्दर्य भी था। पर उद्देश्य अधिक, सौन्दर्य और कला-लाघव कम। इस बार उसके आन्तरिक स्वरूप और सुन्दर तत्त्वने प्रस्फुटित होकर उसके बाहरी आकारको भी प्रांजल और सशक्त बना दिया। टेकनिकल दृष्टिसे भी बड़ेसे बड़े कला-पारखीको उसपर उँगली उठानेका अवसर नहीं रह गया।

पुराने—पारसालके—नृत्योंमें इस बार मुख्य "नगाड़ेकी पुकार" था; जिसमें देश-वासियोंको उठनेके लिये ललकार थी। "मनीपुरी," खड़ाऊँ," "माम्बी," "चतुरंग,"

" गन्धर्व," " गाजन," आदि नये थे। " मनीपुरी "में दलके नर्तक और नर्तकियाँ हाथमें करताल लेकर नाचती हैं। शरीरके अंग-प्रत्यंगकी गतिसे यदि किसी गीतकी रचना की जा सकती है तो यह एक उत्तम नृत्य-काव्य था। " खड़ाऊँ " नृत्यको तिपरा (बंगाल) के विस्मृत कलाभाण्डारसे खोज निकालकर दलने नव जीवन दिया है। पैरोंके कठिन अभ्याससे नृत्यकार संगीत और नृत्यका मोहक दृश्य उपस्थित करते हैं। " माझीमें " पागल करने वाली चाँदनी खिली हुई है। किरणोंके मादक स्पर्शसे उन्मत्त होकर नौजवान लड़के-लड़कियाँ जुहीकी कलियोंकी तरह नृत्यमय यूथोंमें छिटक पड़ते हैं और उनके सौरभसे भवनमें बैठे लोग आत्म-विभोर हो उठते हैं। "चतुरंग" इन सबसे कठिन है, जिसे दलने इतिहासके २,००० वर्षोंके गर्भसे खींच निकाला है। उसकी भावभंगीमें सौन्दर्यके साथ शक्ति और गतिका अद्भुत मेल है।

ये सब नृत्य हैं हमें अपने देशके कला-भाण्डारकी गरिमासे परिचित करानेके लिये। उनके पीछे भी यही देश-प्रेमके भाव हैं:

> इन चीज़ोंको प्रेम करना सीखो। दुश्मनोंने इन्हें नष्ट कर दिया है। इन्हें बचाओ। इनमें इतनी शक्ति है कि सैकड़ों वर्षोंकी दासता भी उनकी दीप्तिको मलिन नहीं कर सकी। उस शक्तिको लेकर उनके उद्धारके लिये आगे बढ़ो— अगर तुम्हें मनुष्यत्वपर कुछ भी गर्व है। एक हो और आगे बढ़ो!

लेकिन अधिक स्पष्ट रूपसे यह सीधा सन्देश देशवासियोंको दिया गया है **अमर भारत** नामक लम्बे नाट्य-नृत्यमें। इस लम्बे नृत्यके ४५ मिनटोंमें देशकी ४५ शताब्दियाँ हमारी नज़रोंके सामनेसे गुज़र जाती हैं।

हमारे गौरवशाली इतिहासका आरम्भ होता है वैदिक युगसे।

श्लोक पढ़े जा रहे हैं। वेदीपर पूजा हो रही है। गंगा-यमुना हिमालयसे निकलकर देशको धन-धान्यपूर्ण बना रही हैं। उन श्लोकोंके स्वर अब भी कानोंमें गूँजते हैं। लोग ुश हैं। सभ्याताएँ और धर्म आते या उठते हैं। देशके विराट जीवनमें सबके लिये स्थान है। बुद्धके लिये, यवनोंके लिये, चैतन्यके लिये। सबका समन्वय होता जाता है। हमारी व्यापक प्रगतिमें व्याघात नहीं होता। तभी आता है एक जादूगर,एक व्यापारी— क्लाइव और हेस्टिंग्ज़ और वैवेलका एक अग्रज। अगले नृत्यों और अभिनयोंमें उसके कुचक्रोंका काला इतिहास है; वही जो हमारी दासता, फूट और दीनता और दयनीयताका करुण और लज्जाजनक इतिहास है। अकालों, अनाजचोरोंकी कहानी। अन्तमें है अनन्त आशाका सन्देश। देशवासी एक होकर विद्रोहके लिये उठ बैठते हैं। एक स्त्री अपने बालकको गोदमें लेकर मृतकोंके अम्बारके बीचसे हमसे पूछती है— कबतक? कबतक? और कबतक? और हम सब कह उठते हैं—बस हो चुका! हो चुका! बस!!

रवि शंकरके संगीतने मूक नृत्योंमें जैसे वाणीके प्राण भर दिये हैं।

यह सब जीवनके प्रति सच्चा इतना है कि कलकत्तेमें अनाजचोरोंका अभिनय देखकर वहाँके मारवाड़ी व्यापार मण्डलने दलके पास एक लिखित प्रार्थना भेजी कि " अमर भारत "के अनाजचोरोंको मारवाड़ी वेषमें न दिखाया जाय!

किन्तु इस मुक्त श्लाघाका अर्थ यह कदापि नहीं कि इस कार्यक्रममें कमज़ोरियाँ नहीं। कमजोरियाँ काफ़ी हैं। पिछले वर्षके प्रदर्शनोंमें टेनिकल उखड़ापन था; तो इस वर्ष अभिनयकी दक्षता और रचनाओंकी सौन्दर्यराशिने अन्तरके राजनीतिक सन्देशको उतना परोक्ष नहीं रहने दिया। "अमर भारत" के विशाल विस्तारने उसके संघटनको कुछ ढीला बना दिया है। चित्रमें सब युगोंका पूर्ण निर्वाह नहीं हो सका।

इन त्रुटियोंकी ओर दलका ध्यान गया है। निश्चय है कि वे दूर हो जायँगी। दलके पीछे जो शक्ति है उसके सामने कठिनाइयोंको नत होना पड़ेगा। भारतके आधुनिक युगमें सांस्कृतिक नव-जागरणका प्रथम आलोक उन्नीसवीं शताब्दीमें उठा था। उसके पीछे, आँखें खोलते हुए देशके अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे मध्यम वर्गकी अभिलाषाएँ थीं: सामाजिक सुधार, बेहतर नौकरियाँ, नौकरियोंके भारतीयकरण, स्वायत्त शासनके कुछ अधिकार, आदिकी सीमित अभिलाषाएँ। लगभग ८०—८५ वर्ष बाद बीसवीं शताब्दीके मध्याह्नके इस सांस्कृतिक नव-जागरणका जन्म देशके करोड़ों मजदूरों-किसानोंके शक्तिशाली आन्दोलनके क्रोड़से हुआ है। इसके पीछे पूर्ण स्वतन्त्रता, और पूर्ण सामाजिक न्यायकी भी उद्दाम इच्छा और वज्र निश्चय है। उसके भविष्यके सम्बन्धमें किसे सन्देह हो सकता है?

—र० सि०

बम्बई इप्टाकी रिपोर्ट

बम्बई "इप्टा" का पंचायती संगठन

बलराज साहनी

जिस तहरीकको अँग्रेज़ीमें पीपुल्ज़ थिएटर या "इप्टा"के नामसे पुकारते हैं उसके प्रान्तीय भाषाओंमें अलग-अलग नाम हैं। बंगालीमें उसे "गण-नाट्य" कहते हैं, मराठी और गुजरातीमें "लोक-नाट्य"। हिन्दीमें अकसर "जन-नाट्य" और उर्दूमें "अवामी थिएटर" का शब्द इस्तेमाल होता है।

इससे कुछ न कुछ उलझन ज़रूर पैदा होती है। यही कारण है कि आम बोलचालमें संस्थाका अंग्रेज़ी नाम ही ज़्यादा सुननेमें आता है। अगर मुख़्तलिफ़ केन्द्रोंके प्रतिनिधि पंचायती तरीक़ेसे कोई ऐसा नाम तजवीज़ करें जो सारे हिन्दुस्तानमें चालू होजाय तो, मेरे विचारमें, बहुत ठीक रहेगा। इस विषयमें आप अगर अपनी राय ख़्वाजा अहमद अब्बास, (जनरल सेक्रेटरी, आलॅ-इन्डिया-पीपुल्ज़ थिएटर, 'समुद्र तरंग'—शिवाजी पार्क, दादर, बम्बई) को लिखें तो उनकी बड़ी मदद हो।

फ़िल्हाल मैं "इप्टा" शब्द का ही प्रयोग करूँगा क्योंकि यही ज़्यादा प्रचलित है।

१७ मार्च, १९४६ को बम्बईकी वार्षिक सभा हुई और कुछ महत्त्वपूर्ण फ़ैसले किये गये।

एक तो यह कि बम्बई शहरकी परिस्थितियोंपर ग़ौर करके बम्बई-शाखाने अपना अलग विधान बनाया। बल्कि यह कहना ज़्यादा सही होगा कि अखिल भारतीय विधानमें उन्होंने अपनी ज़रूरतोंके मुताबिक़ तब्दीलियाँ कर लीं। मूल विधानमें इसकी इजाज़त है।

इस नये विधानके अनुसार बम्बई इप्टामें दो प्रकारके मेम्बर होंगे :

(१) सक्रिय मेम्बर, अर्थात् ऐसे मेम्बर जो इप्टाके किसी न किसी विभागमें रह कर बाक़ायदा और लगातार काम करेंगे।

(२) सहयोगी मेम्बर, जो बाक़ायदा और लगातार काम नहीं कर सकते, लेकिन इप्टासे हमर्दी रखते हैं, और गाहे-बगाहे अधिक तथा अमली मदद दे सकते हैं। इन्हें कमसे कम पन्द्रह रुपये वार्षिक चन्द देना होगा। और इसके एवज़ बम्बई-इप्टाके कुछ खेल वह मुफ़्त देख सकेंगे।

इस तरह रोज़मर्राके काममें हमें आसानी होगयी है।

दूसरा फ़ैसला इस वार्षिक सभामें यह हुआ--कि बम्बई-इप्टाके मुख्य विभाग अपने कामका बोझ यथासम्भव ख़ुद उठाएँ, और पंचायती तरीक़ेसे।

बम्बई इप्टाके मुख्य विभाग ये हैं :

१—हिन्दुस्तानी विभाग

२—गुजराती विभाग

३—मराठी लोक-गीत विभाग

४—मराठी नाटक विभाग

५—अंग्रेज़ी विभाग

६—तेलुगु विभाग

पिछले साल बम्बई-इप्टाके इन विभागोंने क़रीब-क़रीब १५० खेल जनताको दिखाये। लेकिन इन्तज़ामका बोझ बहुत थोड़े व्यक्तियोंके कन्धेपर था। इसलिये तकलीफ़ें पेश आयीं, और कुछ आर्थिक क्षति भी हुई; हालाँकि जनताने खेल पसन्द किये थे। अब इस 'विकेन्द्रीकरण' से हमारा इन्तज़ाम ज़्यादा मज़बूत और ज़्यादा सफल हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं।

मसलन् इस वक़्त तीन नाटक तैयार हो रहे हैं, एक अंग्रेज़ी नाटक (क्लिफोर्ड ओडेट्सका), एक हिन्दुस्तानी नाटक—"आग-गाड़ी" (चन्द्रवदन मेहताके प्रसिद्ध गुजराती नाटकका अनुवाद), और एक गुजराती नाटक—"अल्लाबेली" (लेखक, गुणवन्तराय आचार्य)। ये नाटक टोलियोंके मेम्बरोंने पंचायती रितिसे चुने, और इनका ख़र्च बरदाश्त करनेका भी एक अनोखा तरीक़ा निकाल लिया। वह यह कि मेम्बर यथाशक्ति इप्टाको क़र्ज़ दें और नाटकसे जो आमदनी हो उसमेंसे यह रक़म वापस लेलें। अंग्रेज़ी सेक्शनने डेढ़ हज़ार जमा किया, हिन्दुस्तानी विभागने बारह सौ, और गुजराती विभागने एक हज़ार।

चुनांचे प्रोडक्शनका काम आसानीके साथ और सुनिश्चित रूपसे हो रहा है।

इसी दौरानमें बम्बई-इप्टाके केन्द्रीय अधिकारियोंने तीन-चार हज़ार रुपया अपनी मेहनतसे जमाकर लिया, ताकि समय-समयपर विभागोंकी मदद कर सकें, दफ़्तरका काम भली भाँति होता रहे और इप्टाके प्रान्तीय केन्द्रोंसे मेलजोल बढ़ाया जाए। आशा है कि शीघ्र ही एक टेकनिकल विभाग और एक नृत्य विभाग भी स्थापित हो जाएगा।

बम्बई-इप्टाकी वार्षिक रिपोर्ट छप रही है। मेरे ख़यालमें इप्टाके प्रान्तीय केन्द्रोंके लिये भी यह रिपोर्ट उपयोगी साबित होगी। "नया साहित्य" के पाठकोंकी भी इस रिपोर्टमें दिलचस्पी होनी चाहिये।

फ़िल्मी जगत

सब्ज़ बाग़

सीमियाई

सीमियाई सब्ज़ बाग़ देख रहे थे।

सुना, सुराज आनेवाला है। तो मियाँ क्योंकर आयगा सुराज? आख़िर उसकी शक्ल-सूरत क्या होगी? रंग-ढंग कैसे होंगे?

अख़बारोंसे ख़ास पता नहीं चलता। नौ कनौजियोंके बारह चूल्होंकी खिचड़ी अख़बारोंमें पकती है। कोई कहता है सुराज मुगट पहने आयगा। राजा रामचन्द्रका धनुस धारन करेगा। और अगर ज़रूरत हुई तो सीताजीका संकट हरनेके लिये रावनकी लंका भी फूँकी जायगी।

दिलके बहलानेको यह ख़याल भी बुरा नहीं। सीमियाईने सोचा चलो इसी रूपमें सही; देख लेंगे। 'रामराज' की फ़िल्म देख ही चुके थे, सुराजके सिरपर मुगट धरनेमें देर न लगी। सीमयाईके दिमाग़में सुराजका सब्ज़ा लहलहाने लगा।

... सारे तीरथ, समझो कि, गंगाजलसे धुलवा दिये गये। चौका-बरतन सब लैस। सुराज आकर गुलगुले पकायेगा। नये मेहमानके आनेपर मुँह मीठा करानेका रिवाज पुराना है।

मगर एक अड़चन होगी। मुसलमान उस चौकेमें कैसे बैठेंगे? हिन्दुओंको छूत लग जायगी। इसके अलावा अब तो हमारे मुसलमानोंको भी अपनी पाकीज़गीका ख़याल होने लगा है। क्यों न हो, अख़िर उनके पुरखे भी तो हिन्दू ही थे। रामचन्द्री सुराज आये और उनकी रगोंमें छूत-पातका पुराना ख़ून जोश न मारे!

तब फिर? मियाँ सीमियाईका दिल बैठने लगा। इस मुगटधारी सुराजसे काम न चलेगा।

खट् से सब्ज़ेकी लॉजिक लगायी। चलेगा क्यों नहीं? फ़िल्म रामराज तो एक-सौ-एक हफ़्ते तक चला था!

बात जँच गयी। ढाई-ढाई घंटेके तीन शो हुआ करेंगे। एकमें हिन्दू, एकमें मुसलमान, और नाइट शोमें अंग्रेज़ोंको भी दिखाया जायगा! बेचारोंने इतने दिनों राज सम्हाला है, अब क्या सुराजका तमाशा भी न देखेंगे! इसके बाद रहे सिख, अछूत, किरस्तानी वग़ैरा—सो उनके लिये भी हफ़्तेमें दो दिन मैटिनी शो कर देंगे। चलिये, इंसाफ़ हो गया। औरतोंके लिये सालमें एक दिन सुराजका ज़नाना शो हो जाया करेगा। इससे ज़्यादा और क्या चाहिये? रहे बच्चे। वो तो क़ौमका दर्दसर हैं। धोखेसे ज़मीनपर आ जाते हैं। बहुत रोएँगे तो पटाखे दिलवा दिये जायेंगे। जी चाहे जहा फुलझड़ियाँ छुड़ायें, अनाज की दूकानें और इमारतें जलायें, जय बोलें। और जो जू-जू आये तो अम्माकी गोदमें मुँह छिपानेको क्या कम जगह है?

सबका इन्तज़ाम होगया। किसीकी भी हक़-तलफ़ी नहीं की। मियाँ सीमियाईके बड़प्पनने इतमीनानकी एक साँस ली। तयकर लिया कि सुराजको फ़िल्मोंकी तरह चलायेंगे। यही एक उम्दा तरीका है।

× ×

फ़िल्म और उसकी दुनियासे मिया सीमियाईको खास दिलचस्पी है। ऐसा समाज और कहीं नही। यहाका रहन-सहन, रीत-रिवाज, यहाका आर्ट और कल्चर, लिटरेचर सब कुछ अपने ढंगका। फ़िल्मी दुनियामें न कोई हिन्दू है न मुसलमान, अशोक कुमार कंट्रैक्टपर हुमायूँ बन सकते हैं और शाकिर मियाको जी चाहे जब हनूमानजी बना लीजिये।

शादी-ब्याहका तरीका भी यहाँ बहुत आसान है। जिससे जी मिल जाय, उससे करो। दिनमें हज़ार बार करो। सबको मंज़ूर। जी भर जाय तो हज़ार बार तलाक़ दो। वह भी सबको मंज़ूर।

घरोंसे निस्बत नहीं, 'फ़्लैट' हो गये हैं।

खाना लिबरल; मोटी मुर्ग़ीसे लेकर रामनामी कढ़ीतक एक प्लेटमें उड़ाइये।

पानी उतर गया। यहाँ शराबसे प्यास बुझती है।

ज़िन्दगीका जुआ कन्धोंसे उतार दिया। सब जुआ खेलते हैं।

ज़मानेकी रफ़्तारके साथ दौड़नेकी ज़रूरत नहीं। घोड़ोंकी रेसमें हिस्सा खूब लेते हैं।

आर्ट दुनियावालों के लिये है। यहाँ तो सभी आर्टिस्ट हैं।

पोशाककी कैद नहीं। लँगोटी और पतलूनका भाव एक ही है; घाँघरे दुपट्टे से लेकर फ्रॉक तक सब चलता है। इस तरह हर सूबे और हर क़ौमका सुहाग सदा हरा रहता है।

मियाँ सीमियाईका जी हरा हो गया। जो लौ लगी तो आप ही आप गुनगुना उठे:

'गाड़ीवऽल्ले! दुपट्टा उड़ा जाय रे! हाय उड़ा जाय रे!'

—मगर यह तो औरतोंका गाना है जी! तो क्या हुआ? फ़िल्मी दुनियामें औरत-मर्दका भेद-भाव ही नहीं। मिस नाडियाके स्टंट देखे हैं? मर्दोंके छक्के

छुड़ाती हैं यहाँकी औरतें। और जितने फ़िल्मी हीरो हैं सो उनका दिमाग़ भी किस औरतसे कम है? हर दम अपने ही क़ज़िये, अपने ही क़िस्से, हर दम अपनी ही खूबसूरतीके चर्चे। उन्हें दुनियासे मतलब ही नहीं। चाहे हिन्दुस्तान रहे या पाकिस्तान बसे। वो परिस्तानमें ही रहते हैं।

यों तमाशेमें लिखे डायलाग बोलकर क़ौमपरस्ती और इन्सानपरस्ती भी कर ही लेते हैं। सितारे दूर से अपनी हमदर्दी टिमटिमानेके अलावा और कर ही क्या सकते हैं बेचारे?

चलिये यह आड़ भी न रही। मियाँ सीमियाई जी खोलकर गाने लगे :

'साड़ीवऽल्ले! दुपट्टा उड़ा जाय रे! हाय उड़ा जाय रे!
मोरा बाला जोबन शरमाये रे! हाय उड़ा जाय रे!'

शरमानेकी बात आई तो ख़ुद भी शरमाने लगे। मगर यह शर्म क्यों? फ़िल्मी-समाजको शर्मसे क्या सरोकार? और फिर यह तो उनका लिटरेरी गाना है। फ़िल्मी दुनियामें ऐसे गीतोंकी क़ीमत तीन-तीन हज़ार रुपये तक दी जाती है। इसलिये यह क़ीमती लिटरेचर है। भला टैगोरको कभी सपनेमें भी अपने किसी गानेकी क़ीमत तीन हज़ार मिली थी? इसके अलावा सारा हिन्दुस्तान इसे गाता है। टैगोरका कोई गाना इस तरह पापुलर हुआ?

तो कौनसा लिटरेचर सच्चा? फ़िल्मी, या उन तमाम बाहरी लिटरेचरियों का?

मियाँ तैशमें थे। बिना समझे बूझे ये इंटलेक्चुहलिये हमारी फ़िल्मोंको बुरा कहते हैं। हमारी फिल्में न होतीं जनाब, तो......

पड़ोसिनने ग्रामोफ़ोनपर तवा चढ़ाया था। मियाँ सीमियाईका ध्यान बँटा। वैसे ही पड़ोसिन और उनकी ननद भी गानेके सुरमें सुर निकालने लगीं।

'आये जवानी, जाये जवानी—
जाके फिर ना आये।
चिड़ियोंने चुग लिया खेत
फिर लाख खड़ा पछताये।
कहो ये झूठ बात है?—ऊहुँ—
तो बस पीलो खालो
जवानीके गुन्न गालो! जवानीके गुन्न...

सीमियाई ताज़े होगये। इसे कहते हैं शायरी! कहाँ तक नज़र पहुँची है! क्या फ़िलासफ़ी है! कौनसा टैगोर यह लिख सकता है? सब देशभक्ति और भगवद्भक्ति न जाने क्या-क्या अललटप्पू शायरी लिखते हैं। वे सब तो मौसमी चीज़ें हैं। मगर जवानी तो सदाबहार है। उसके गुन गाइये। पीजिये।

यही वह सच्ची फ़िलासफ़ी है जिसपर हमारा फ़िल्मी समाज आबाद है। इसीको वह सच्चे दिलसे अमलमें लाते हैं, और इसीका प्रचार करते हैं।

सोचिये, अगर फ़िल्में न होतीं तो लड़ाईकी तकलीफ़ोंसे जनताको कौन उबारता ? सन् ४२ में नेता लोग तो आग लगाकर चल दिये। उस वक़्त बंगालकी भूख सारे हिन्दुस्तानको निगल जाती। सलामत रहें फ़िल्मवाले, जिन्होंने पेटकी भूखको प्रेमकी भूखमें बदल दिया। लाखों साजन और सजनियाँ पैदा करदीं। इसलिये क़ौमके नाजुक नौजवानो! फ़िल्मोंमें भरती हो!

—लड़ाईके ज़मानेमें फ़ौजमें भरती आयी। मियाँका जी चाहा कि फ़ौज और फ़िल्म में भरती होनेके पोस्टरोंको एक साथ चिपकाकर उसके नीचे लिख लिया जाय: 'प्यारे भाइयो, मरना दोनों जगह है; मगर मरने-महनेमें कितना फ़र्क़ है।'

फ़िल्मी दुनियामें रेस है, सट्टा है, शराब है, शरबती आँखें हैं। इसे आज़ादी कहते हैं। जिस ऐशके लिये दुनिया मर रही है, वह ऐश 'हमींनस्तो, हमींनस्तो, हमींनस्त।'

इसके अलावा, नाम! शोहरत! अजी कैसी कि मिनटोंमें छोटे आदमीसे बड़े आदमी बन जाइये। दुनिया आपके पीछे दौड़ेगी। यहाँ कामसे नहीं, पैसेसे शोहरत ख़रीदी जाती है। यह आसान तरीक़ा है। और उस शोहरतके बलपर हम मुग़ल शाहंशाह बन जाते हैं। जो हमारी तारीफ़ करके राज़ी करले उसे हम राजा बना दें; और अस्लियत का इज़हार करनेवाले एडीटरका हम खून भी कर देते हैं।

खून! जोशमें आकर मियां सीमियाई सोच तो गये, मगर वैसे ही ठंडे भी पड़ गये। सीमियाई खुद भी एक एडीटर हैं। इसके अलावा सब्ज़बाग़में खूनके धब्बे खट-कते हैं।

मियाँ सीधे-से दुनियापर आ गये। क्या झूठकी दुनियामें रहते-रहते ईमान सच का दुश्मन तक हो जाता है? हां, तो सच! हर क़िस्मकी बदचलनी और बेवक़ूफ़ी भरे ग़रूरको गलेसे लगाकर भी ये फ़िल्मवाले दिलसे देवता बननेके ही सपने देखते रहते हैं। दरअस्ल वह देवता बनना चाहते हैं, मगर अपनी कमज़ोरियोंकी बजह से न बन सकनेपर वह छापेके हरूफ़से सजकर देवता बननेकी कोशिश करते हैं। नेता वह हैं, देवता वह हैं, पैग़म्बर वह हैं—पानीकी तरह पैसे खर्च करके अपनी इस तरहकी तारीफ़ें छपवाते हैं और उन्हें पढ़कर खुश भी होते हैं। धीरे-धीरे झूठकी उन्हें आदत पड़ जाती है और वे सचका खून करने तकसे नहीं हिचकते।

मियाँ सीमियाईने तय कर लिया कि यह फ़िल्मी सुराज नहीं चलायेंगे। यह बेवक़ूफ़ोंका बहिश्त है। सब्ज़बाग़ है जो सिर्फ़ दूरसे ही सुहावना लगता है।

★ मज़दूर
★ डाक्टर कोटणीसकी अमर कहानी
★ धरतीके लाल

"मज़दूर," "डा० कोटणीसकी अमर कहानी" और "धरतीके लाल" भारतीय फिल्मोंके बदलते हुए युगके सूचक हैं।

मज़दूर में अपने आदमियों द्वारा नक़ली यूनियन बनवाकर मज़दूरोंकी असली सभाके विरुद्ध मिल मालिकोंके हथकण्डोंका काफ़ी मार्मिक चित्र डायरेक्टर श्री नितिन बोसने उपस्थित किया है। मज़दूर आन्दोलनमें फूट डालनेके लिये मालिक और उनके गुर्गे विरोधी नयी यूनियनों (मज़दूर संघों, मज़दूर सेवक संघों, आदि) के अस्त्रका अधिकाधिक उपयोग करने लगे हैं। औद्योगिक संकट और ऊहापोहके आनेवाले दिनोंमें इसकी भयंकरता देशमें और बढ़ेगी। इस फ़िल्मका निर्माण करके, और न्यायोचित मांगोंके लिये मालिकोंसे अपनी असली मज़दूर सभाके द्वारा सामूहिक रूपसे मोल भाव करनेके मज़दूरोंके अप्रतिबन्धित अधिकारकी प्रतिष्ठा करके, श्री नितिन बोसने मज़दूर आन्दोलनकी एक महत्वपूर्ण समस्यापर प्रकाश डाला है और मज़दूरोंकी सेवाकी है। हमारे देशके अक्सर अख़बारवाले भी इन मिल मालिक पूँजीपतियोंसे कैसे मिले रहते हैं--इसका भी चित्रमें आभास मिलता है।

डाक्टर कोटणीसकी अमर कहानी हमारे देशके नहीं, दो बड़े देशोंके एक अमर वीरकी कहानी है।

१९३७ में जापानी फ़ासिस्टोंके ख़िलाफ़ लड़ाईमें चीनकी जनताकी मदद करनेके लिये पाँच डाक्टरोंका एक दल ('मेडिकल मिशन') कांग्रेसने चीन भेजा था।

डाक्टरोंके लिये पंडित जवाहरलालकी अपील सुनकर कोल्हापुर (महाराष्ट्र) के तरुण डा० कोटणीसने भी अपना नाम दे दिया। बुढ़ापेकी लकड़ी समझकर ग़रीब माता पिताने कोटणीसको अपना पेट काटकर और क़र्ज़ा भरकर पढ़ाया था। लेकिन देश और मनुष्यताकी पुकारके समाने वे अपने दुख-दर्दको भूल गये और कोटणीसको चीन जानेकी आज्ञा दे दी।

दलके साथ कोटणीस छापेमारोंकी पाँतोंके पीछे कम्युनिस्ट चीन पहुँचे। अपने जीवनको हथेलीमें लेकर वीर चीनी जनताकी उन्होंने अथक सेवा की। जानको जोखिममें डालकर अपनेही शरीरपर प्रयोग करके उन्होंने नयी-नयी दवाइयाँ ईजाद कीं। ग़रीब चीनकी युद्धकालीन कठिनाइयोंने उनके स्वास्थ्यको छार-छार कर दिया और वहीं कर्तव्यकी बलिवेदीपर उनकी मृत्यु हो गयी।

मरनेसे पहले डा० कोटणीसने एक चीनी तरुणी डाक्टरनीसे विवाह किया था, और उन्हें एक पुत्ररत्न भी प्राप्त हुआ था।

इसी कहानीको देशके प्रसिद्ध डायरेक्टर शान्तारामने फ़िल्मपर उतारनेकी कोशिशकी है।

धरतीके लालका निर्माण न केवल विषयके कारण बल्कि उसकी यथार्थवादी टेकनीक और नये प्रयोगके कारण भी भारतीय फ़िल्म जगतकी एक युगान्तरकरी घटना

है। " धरतीके लाल " का विषय १९४३-'४४ का बंगालका अकाल है। अकाल-पड़ितों के चित्र, भूखमें एक साथ कई-कई पीढ़ियोंकी नष्ट होती हुई नैतिकता, मृत्युके उस ताण्डवके बीच अनाजचोरोंकी करतूतें—उनका फ़िल्ममें ऐसा क्रूर और करुण परिचय मिलता है कि चित्रको देखनेके बाद बहुत दिनों तक उसके स्मरणसे मन बेचैन रहता है।

बगांलकी महा विपत्तिका आधा-तिहाई अनुमान भी देशको अभी नहीं हुआ। उसे प्रस्तुत करनेके लिये—हमारी पीढ़ीकी उस सबसे भयानक और विनाशकारी घटनाका पूरा परिचय देनेके लिये—"धरतीके लाल" ऐसे कई फ़िल्मों तथा अनेक पुस्तकों, उपन्यासों, कहानियों, गीतों और नाटकोंकी आवश्यकता होगी। तभी हम उस समयकी अपनी उदासीनता और साम्राज्यवादियों तथा अनाजचोरों तथा देशके अन्य समाज-विरोधी लोगोंके गुनाहोंका अन्दाज़ा लगा सकेंगे। जन नाट्य संघके नौसिखिये पात्र-पात्रियों और डायरेक्टरों द्वारा बनाया गया यह फ़िल्म उसकी एक भूमिका मात्र है।

इन तीनोंही फ़िल्मोंमें खामियाँ हैं। " मज़दूर " की कहानी रोचक और काफ़ी सजीव नहीं है, जिसकी वजहसे उसकी अपील वर्गचेतन मज़दूरों तक ही सीमित हो जाती है। गीतोंमें उसके, जान नहीं है। वे आवश्यक भी बहुत नहीं लगते। डा० कोटणीसकी अमर कहानीमें न हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनकी पृष्ठभूमि है न चीनी जनताके दुर्जेय संघर्षका आभास। प्रेम-कहानीको आवश्यकतासे अधिक तूल दे दिया गया है। छापेमार नेताका चित्र चीनके उन सर्वथा अजेय वीरोंके नेताका नहीं, एक जोकर कासा चित्र है। " धरतीके लाल " में टेकनिकल कमज़ोरियाँ हैं। कहानी भी बहुत ऊँची नहीं उठ सकी है।

पर इन सब खामियों और कमज़ोरियोंके बावजूद ये फ़िल्म उस युगके आरम्भके हरकारे हैं जिसमें देश और मनुष्य जातिकी आज़ादी तथा अन्य मानवी अधिकारोंके लिये अपने जीवनको खपा देनेवाले वीरों और शहीदोंके चरित्रको तथा जन-जीवनके वास्तविक संघर्षोंको फ़िल्मी दुनियामें स्थान मिलने लगा है। देश और फ़िल्मी उद्योग दोनोंहीके लिये यह कल्याणकर होगा।

र० सं०

सांस्कृतिक नव-जागरण : साहित्य

युक्त प्रान्तीय हि. सा. स. का शिकोहाबाद अधिवेशन

गत १९ से २१ अप्रैलतक शिकोहाबाद (मैनपुरी) में प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका छठा वार्षिक अधिवेशन हुआ।

अधिवेशनको साहित्यिकोंका सम्मेलन न कहकर अध्यापकों, सब-डिप्टी इन्सपैक्टरों, डिप्टी इन्सपैक्टरोंका सम्मेलन कहा जाय तो शायद ज़्यादा सही होगा। सम्मेलनमें

प्रान्तके साहित्यिक आये थे न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक, और न नवयुवक साहित्यिक जो साहित्यको नयी दृष्टिसे देखनेकी क्षमता रखते हैं।

दुर्भाग्यसे इधर कुछ वर्षोंसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन कुछ ऐसे व्यक्तियों और दलोंके हाथमें पड़ गया है जिन्हें न साहित्यसे दिलचस्पी है, न हिन्दीके प्रचार कार्यसे। उनकी खूबी केवल यह है कि उनकी पीठपर या तो किसी सरकारी अफ़सरका हाथ है या किसी धनी सेठका। उन्हींके इशारेपर ये सज्जन नाचते हैं और साहित्य सम्मेलन को भी नचाते हैं। इस अधिवेशनमें भी इन्हीं लोगोंका दबदबा था।

अधिवेशनमें कम ही काम वैधानिक ढंगसे किये गये। न विषय निर्वाचिनी समितिकी कोई बैठक हुई न उसका चुनाव। कुछ खास आदमियोंको ही प्रस्ताव पेश करनेका अवसर मिला। वही पुराने प्रस्ताव थे—रेडियो, अदालतोंमें हिन्दी प्रचार, आदिके सम्बन्धमें, जो प्रत्येक सम्मेलनमें पास होते-होते रूढ़ हो गये हैं।

फिर अगर ऐसे वातावरणमें अधिवेशन हिन्दी साहित्यकी रचना या प्रचारकी किसी भी समस्याकी ओर ध्यान देनेमें सर्वथा असमर्थ रहा तो इसमें आश्चर्य ही क्या।

——अधिवेशनमें प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके कार्यकी कोई समुचित रिपोर्ट पेश नहीं की गयी।

——रचनात्मक साहित्यके प्रणयन या प्रकाशनकी समस्याओंपर न कोई विचार-विनिमय किया गया न उनके सम्बन्धमें कोई योजना ही बनायी गयी।

——रचनात्मकके अतिरिक्त इतिहास, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, विज्ञान, भूगोल, आदि अन्य विषयोंका साहित्य हिन्दीमें तैयार करानेके सम्बन्धमें भी अधिवेशनने न विचार किया न कोई निर्णय।

——रूढ़ प्रस्तावोंको पास करनेके अलावा हिन्दीकी लोकप्रियता और प्रचारको बढ़ानेके लिये भी अधिवेशनने कोई व्यावहारिक क़दम नहीं उठाया। हाँ, हिन्दी-उर्दू-जनपदीय भाषाओं, प्रगतिवादी साहित्य, आदिके प्रश्न अवश्य उठाये गये। लेकिन उनके पीछे न अध्ययन था न चिन्तन और न दृष्टिकोणकी गम्भीरता। कुछ इधर ही उधर इन समस्याओंका ज़िक्र होकर रह गया।

उर्दूके विरोधमें असंयमका प्रदर्शन नहीं था। अधिवेशनके उद्घाटनके लिये श्री सम्पूर्णानन्दने अपना लिखित भाषण भेजा था। उसमें उन्होंने कहा:

"हमको भाषाके प्रश्नपर ठंडे दिलसे विचार करना है। यह हिन्दू-मुसलमानका साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं है।......मैं उर्दू नाम तो स्वीकार नहीं कर सकता परन्तु हिन्दी नाम छोड़नेको तैयार हूं। राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी कहलाये, इससे मुझे विरोध नहीं है......मुझे अरबी-फ़ारसीसे आये शब्दोंसे कोई चिढ़ नहीं है...।'

अध्यक्ष डा० अमरनाथ झाने कहा कि उर्दूका भी अपना साहित्य है। इसी प्रकार जनपदीय भाषाओंके सबन्धमें उन्होंने कहा:

" मातृभाषा आरम्भिक शिक्षाका माध्यम हो, इस विचारसे सभी सहमत हैं। आजकलकी शिक्षा-प्रणालीमें इस सुधारकी सबसे बड़ी अवश्यकता है। "

इन वक्तव्योंकी सीमाओंको मानते हुए भी, इनमें कटुताकी वह मात्रा नहीं थी जो हिन्दी-उर्दू या जनपदीय भाषाओं (मातृभाषाओं) के सम्बन्धमें होनेवाले वाद-विवादमें आम तौरसे मिलती है।

कवि-सम्मेलनको तो देखकर लगता था जैसे दो सौ वर्ष पुराने किसी दरबारका युग लौट आया हो। अधिवेशनमें डा० सुनीति कुमार चैटर्जी और डा० उदय नारायण तिवारीने " तानसेन " और " बोलियोंमें अरबी-फ़ारसीके शब्द " पर क्रमशः दो अच्छे निबन्ध पढ़े। पर वे उस माहौलमें एक तरहसे खो गये।

मानो यह सम्मेलन हमारी साहित्यिक प्रगतिको नहीं उसकी अवनतिको नापनेका मापदण्ड था।

—पहाड़ी

प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ

हिन्दीके पुराने साहित्य-सेवी और प्रकाशक आदरणीय श्री नाथूरामजी प्रेमीके सम्मानार्थ हिन्दीके कई विद्वानोंकी देख-रेखमें "प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ"की आयोजना की गयी है।

लगभग १००० पृष्ठके ग्रन्थमें अट्ठारह विभाग हैं। प्रत्येक विभागकी सामग्री का संकलन और सम्पादन सर्व श्री डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, आचार्य क्षितिमोहन-सेन, डा० मोतीचन्द, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्रकुमार, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, सत्यवती मल्लिक आदि विद्वानोंने किया है। ग्रन्थमें सर्वश्री नन्दलाल बोस, देवीप्रसाद राय-चौधरी, असित हलदार, सुधीर खास्तगीर, कनु देसाई आदि कलाकारोंके चित्र देनेकी भी व्यवस्था की गयी है। इस सुन्दर योजनाके पीछे अनेक साहित्यिक आन्दोलनोंके जन्मदाता और पत्रकार-नेता श्रीयुत बनारसीदासजी चतुर्वेदी और उनके सहयोगी श्री यशपाल जैन आदि का हाथ है।

ग्रन्थ समाप्तप्राय है और शीघ्र ही बम्बई, बनारस या इलाहाबादमें उसके भेंट-समारोहकी व्यवस्था की जायगी।

ग्रन्थका मूल्य १५) होगा। अभीसे ८) पेशगी भेजकर ग्राहक बनजाने वालोंको १०) में ही वह मिल जायगा। पत्र-व्यवहारका पता यह है:—श्रीयशपाल जैन, मार्फ़त "मधुकर," टीकमगढ़, सी. आई.।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
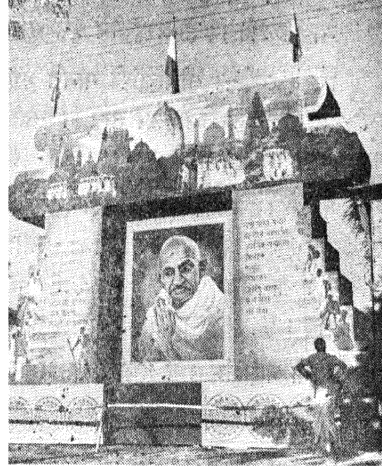
सेवाग्राम रचनात्मक कार्यक्रम प्रदर्शिनीका गांधी द्वार

गांधीजीकी प्रेरणासे सन् १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनने दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका काम शुरू किया था। स्व० जमनालाल बजाजने रुपये-पैसेसे मदद की। श्री. देवदास गांधी और स्वामी सत्यदेव परिव्राजकने दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारका बीड़ा उठाया।

सभाकी स्थापना फ़रवरी, सन् १९२७ में हुई। बापू उसके आजीवन-अध्यक्ष हुए।

जनवरी, सन् १९४६ मे सभाने अपना रजत जयंती महोत्सव मनाया।

हिन्दी प्रचार सभा आज दक्षिण भारतकी एक बड़ी संस्था है। सभाके प्रचारक हिन्दी प्रचारके साथ-साथ भ्रातृभाव और सेवाधर्मका प्रचार भी करते हैं।

उनके अधिक परिश्रमका ही परिणाम है कि 'हिन्दी प्रचार' दक्षिण भारतमें एक घरल शब्द हो गया है। आज सभाके कमसे-कम १२०० प्रचारक काम कर रहे हैं। इनमें केवल १२ उत्तर-भारतीय हैं, बाकीने यहीं हिन्दी सीखकर हिन्दी सेवाका व्रत लिया है।

दक्षिणावर्तमें हिन्दी प्रेमकी लहर दौड़ा देना कोई आसान काम नही था। शुरूमें सभाके प्रचारकोंको लोहेके चने चबाने पड़े थे। उदाहरणके लिये एक हिन्दी प्रचारक की कार्य-साधनाका जिक्र करना अनुचित न होगा।

उम्र साठके लगभग; शरीरका वजन भी उन हीरोंसे कम नहीं था जो आगा खाँको तौलनेमें काम आये। उसके शहरके एक सम्मानित देशभक्त डॉक्टर महाशयको देशभक्ति की ही एक धुनमें राष्ट्रभाषा सीखनेकी इच्छा हुई। प्रचारक महाशय दूसरे दिनसे ही उन्हें हिन्दी सिखानेके लिये तैयार हो गये। तय हुआ कि वह रोज सुबह साढ़े सात बजे आकर, डिस्पेंसरी जानेसे पहले डॉक्टर साहबको हिन्दी पढ़ाया करेंगे।

दूसरे दिन सुबह ठीक साढ़े-सात बजे हिन्दी-प्रचारक श्री सुब्बारावजी डॉक्टर साहबके बँगलेपर पहुँच गये। मगर...

डॉक्टर बोले : ' सुब्बाराव, यह मेरे नाश्ता करनेका वक़्त है। ऐसा करो, तुम सबेरे ६ बजे आया करो।'

सुब्बाराव इसमें भी राज़ी। दूसरे दिन सुबह ठीक ६ बजे पहुँचे। यह वक़्त डॉक्टर साहबके सोकर उठनेका था। डॉक्टरने कहा, ' सुब्बाराव, इस वक़्त तो जरा भी फ़ुरसत नहीं रहती। तुम पाँच बजे आकर मुझे जगा दिया करो। बस फिर साढ़े पाँचसे साढ़े ६ बजे तक हिन्दी पढ़ा करूंगा। '

सुब्बाराव भारी शरीर और लटी उम्रका बोझा लादकर, चार-पाच मील ज़मीन पैदल तय करके रोज़ सुबह ठीक पाँच बजे डॉक्टर साहबके बंगलेपर पहुँचने लगे।

चार पाँच रोज़ तक यह सिलसिला चला। आख़िर डॉक्टर साहब झल्ला गये। बोले, 'सुब्बाराव, तुम भी अजब आदमी हो ! एक दिन भी ग़ैरहाज़िर नहीं होते ! '

श्री सुब्बाराव ऐसे उत्साही कार्यकर्ताओंके कारण ही सभा आज अपनी रजत-जयंती महोत्सव मना सकी है। ५० हज़ारसे अधिक विद्यार्थी हैं। लाखोंने हिन्दी सीखी है। प्रति वर्ष २० हज़ार विद्यार्थी हिन्दी परीक्षाओंमें बैठने लगे हैं।

आज तमिल, आंध्र, केरल तथा कर्नाटक प्रान्तोंमें सभाके चार प्रान्तीय कार्यालय हैं। करीब ६ सौ केन्द्रोंमें सभाका काम चल रहा है। लगभग चार सौ हाई स्कूलों में हिन्दी पढ़ायी जाती है। मद्रास, आंध्र, मैसूर और तिरुवांकूर यूनिवर्सिटियोंने इंटर, बी. ए, एम ए. और ' प्राच्य विद्या'-उपाधि परीक्षाओंमें हिन्दीको स्थान दिया है। मद्रास सरकारके अलावा दक्षिणकी रियासतोंने भी हिन्दीको अपने स्कूलोंमें स्थान दिया है। सभाकी ओरसे हिन्दीके प्रति प्रेम पैदा करनेके लिये कई तरीके काममें लाये जाते हैं। प्रचार तथा प्रचारक सम्मेलन, प्रमाण-पत्र वितरणोत्सव, यात्री दलोंका भ्रमण, हिन्दी वाद-विवाद सभाए, हिन्दी नाटकोंका प्रदर्शन, हिन्दी वाचनालयों तथा पुस्तकालयोंकी स्थापना, हिन्दी विद्यालय, हिन्दी प्रेमी मण्डलों आदिकी स्थापनासे दक्षिणमें हिन्दीका क्षेत्र दिनोदिन व्यापक हो रहा है। प्रति वर्ष हिन्दी प्रचार सप्ताह भी मनाया जाता है।

सभाका प्रकाशन विभाग दक्षिणकी भिन्न-भिन्न भाषाओं द्वारा हिन्दी सीखनेके लिये तथा हिन्दी साहित्यका परिचय करानेके लिये पुस्तकें प्रकाशित करता है। अब तक सभाकी ओरसे १२५ पुस्तकोंका प्रकाशन हो चुका है, जिनमें अक्षर-बोधसे लेकर कोष तक शामिल हैं। ' हिन्दी प्रचार पत्रिका' भी प्रकाशित होती है। इसके अतिरिक्त हिन्दी की पुस्तकोंका प्रचार करनेके लिये सभाने एक बिक्री विभाग भी खोल रखा है। सभाका अपना पुस्तकालय, अपना प्रेस और अपने भवन हैं। सभाका कार्य दिनोदिन उन्नति कर रहा है।

—अमृतलाल नागर

साहित्य सृजन और 'अहं'

प्रकाशचन्द्र गुप्त

विचार और अनुभूति[1] नगेन्द्रजीके स्फुट आलोचना-निबन्धोंका संग्रह है। इस संग्रहमें नगेन्द्रजीके प्रौढ़ आलोचक-रूपकी अभिव्यक्ति हुई है। इन निबन्धोंमें गम्भीरता है, कला है और मार्मिकता है। जो परिधि अपने विचार और भावोंके लिये विद्वान लेखकने बनायी है, जो सीमाएँ उसने अपनी कल्पनाके लिये निर्धारित की हैं, उनके अन्दर उसने यथासिद्ध सफलता पायी है। नगेन्द्र रसवादी हैं, शाश्वतवादी और आदर्शवादी हैं। इधर वे फ़्रायडकी ओर झुके हैं, और इस संग्रहकी अनेक स्थापनाएं फ़्रायडकी विचार-धारासे प्रभावित हुई हैं। छायावादकी नैतिकतासे फ्रायडकी अतृप्त काम वासना तक नगेन्द्रजीका साहित्यिक विकास पहुँचा है, किन्तु उसके मूलमें शेखरके समान शाश्वत सूत्रोंकी खोज है, जो सदा ही हर परिस्थितिमें समानरूपसे लागू हो सकें। आदर्शवादी आलोचक, जो बाहरकी परिस्थितिमें मनकी परछाईं देखता है, अपनी हिलती विश्वासकी नींवका अन्तिम आधार फ़्रायडमें खोजता है। वह समझता है कि मनुष्यके मनका अतल-स्पर्शी वर्णन फ़्रायडने सदाके लिये कर दिया। यही विश्वास प० इलाचन्द्र जोशीकी रचनाओंमें व्यक्त हुआ है। इस प्रकार छयावादके समर्थक और विरोधी दो आलोचकोंका मिलन मनःविश्लेषणकी उदार भूमिपर हुआ है। जोशी जी और नगेन्द्रजी दोनों ही मार्क्सवादको जीवनका असम्पूर्ण और एकांगी चित्र मानते हैं। वे भूल जाते हैं कि मनुष्यके मनका कोई शाश्वत नक़्शा नहीं बन सकता। परिवर्तनशील जगमें, बदलती परिस्थितियोंके अनुसार मनुष्यके मनमें भी नित्य नये विचार और भाव उठा करते हैं। पूंजीवादी समाज-व्यवस्थाके अन्तर्गत भी मनुष्यके मनका नक़्शा एक हद तक फ़्रायडने ठीक खींचा है, किन्तु एक नयी समाज-व्यवस्थामें मनुष्यका मन और फिर अन्तर्मन भी नये रूप बदलेगा। फ़्रायडकी उपासना डारविन और मार्क्सके युगमें शाश्वतवादियोंका अन्तिम आधार है। अपने पैरके नीचेसे खिसकती ज़मीनको फ़्रायडका अवलम्ब पाकर वे स्थिर समझने लगते हैं।

"दीपशिखा"के सम्बन्धमें नगेन्द्रजी लिखते हैं:—"...वास्तवमें सभी ललित कलाओंके—विशेषतः काव्यके और उससे भी अधिक प्रणय-काव्यके—मूलमें अतृप्त कामकी प्रेरणा माननेमें आपत्तिके लिए स्थान नहीं है।" (पृष्ठ १२५-१२६)

आगे चल कर "महादेवीकी आलोचक दृष्टि" में आप लिखते हैं:—"महादेवी के साहित्यिक मान नैतिकताके बोझसे काफ़ी दबे हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। और इसमें उनका स्त्रीत्व बाधक हुआ है, जो मर्यादासे बाहर जीवनकी मुक्ति खोजनेका अभ्यासी नहीं है। और वास्तवमें अभी महादेवीजीकी दृष्टि पूर्ण सामंजस्यकी अधिकारिणी भी नहीं हो पायी। क्योंकि उसमें पुरुषत्वसे भिन्न नारीत्वकी इतनी प्रखर चेतना वर्तमान है कि वह पुरुषको आततायी प्रतिद्वंदीके अतिरिक्त और कुछ कठिनाईसे ही समझ पाती है।

१. **विचार और अनुभूति :** लेखक—नगेन्द्र एम्. ए.। प्रकाशक—प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद। मूल्य सजिल्द ३)। छपाई-सफ़ाई बहुत सुन्दर।

" महादेवी जैसे उन्नत व्यक्तित्वमें यह भाव अवश्य किसी ग्रन्थिकी ही अभिव्यक्ति है, जो अभी उलझी रह गई है। " (पृष्ठ १३५)

सूत्रोंके प्रति नगेन्द्रजीका मोह हमें "शेखर"के बाबा मदन सिंहका स्मरण दिलाता है । आपने अपने आलोचना-भवनकी दीवारोंपर इस प्रकारके सूत्र लिख रखे हैं :

" गीतकी अपनी टेकनीक होती है । वह अपने जन्मसे ही वन्य-कण्ठोंमें पला है । इसलिये उसकी गति और लयमें--यहाँ तक कि उसकी शब्दावलीमें भी--वन्य संस्कार वर्तमान रहते हैं । " (पृष्ठ १३०)

इस प्रकारके सूत्रोंमें 'विचार'की अपेक्षा 'अनुभूति'की ही प्रधानता अधिक है। वास्तवमें नगेन्द्रजीकी सभी आलोचनापर उनकी छायावादी आत्माकी अमिट छाप है । पुस्तकका आरम्भ कवि-गुरुकी स्तुतिसे हुआ है, जो गद्य-गीतका एक सुन्दर उदाहरण है। पहले अध्यायमें आचार्य किसी सुन्दरीको साहित्यके सिद्धान्तोंमें दीक्षित करते हैं। नगेन्द्रजीने निरन्तर अपनी आलोचनाको नाटक और कहानीका रूप देनेका प्रयास किया है। इससे उनकी आलोचना रोचक तो बनी है, किन्तु पाठकतक उनकी बात पहुँचनेमें व्याघात आवश्य पड़ता है ।

नगेन्द्रजी साहित्यमें अहंको महमत्ता देते हैं । आप लिखते हैं :

" साहित्यकी सृजन प्रक्रियासे स्पष्ट है कि वह जीवनकी भावगत व्याख्या है । वह जीवनकी अर्न्तमुखी साधना है। अतः स्वभावसे ही साहित्यकारमें अन्तर्मुखी वृत्तिका ही प्रधान्य होता है । वह जितना महान होगा उसका अहं उतना ही तीखा और बलिष्ठ होगा जिसका पूर्णतः समाजीकरण असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य हो जायगा ।

" संसारमें ऐसा साहित्यकार विरला ही होगा जिसने किसी अपरागत उद्देश्य से पूर्णतया तादाम्त्य स्थापित कर लिया हो । गोर्की, इक़बाल, मिल्टन आदिके व्यक्तित्व का विश्लेषण असंदिग्ध रूपसे सिद्ध कर देगा कि उनके भी साहित्यमें जो महान है वह उनके दुर्दमनीय अहंका ही विस्फोट है, साम्यवाद, इस्लाम या प्यूरिटन मतकी अभिव्यक्ति नहीं ।..." (पृष्ठ ६६)

कलाकारका व्यक्तित्व महत्त्व बहुत रखता है; किन्तु प्रेमचन्द अथवा पन्त उसे ग्रामीण जनताके रंगमें रँग डालते हैं, 'बच्चन,' जैनेन्द्र और भगवतीचरण वर्मा अहम्मन्यतामें; किन्तु नगेन्द्रजी यह समझनेमें असमर्थ हैं और गोर्की, इक़बाल और मिल्टन तककी नीयतपर सन्देह करते हैं। आपके कथनके अनुसार व्यक्तिवादी और अहंवादी लेखक ही सच्चे और ईमानदार लेखक हैं, और सब मिथ्यावादी और ढोंगी हैं।

नगेन्द्रजी हिन्दीके प्रतिभावान आलोचक हैं। उनकी रचनाओंके पीछे गम्भीर अध्ययन और मनन है। हिन्दीमें शास्त्रीय, रूढ़िवादी—यानी सनातनवादी—पद्धतिकी प्रौढ़ आलोचना हमें आपकी लेखनीसे मिलती है । "विचार और अनुभूति" में आपने आधुनिक हिन्दी साहित्यपर एक विहंगम दृष्टि डाली है । आपकी रचनामें सौन्दर्य और शास्त्र-बोध है, किन्तु जो सीमाएँ आपने अपने विचारोंके चतुर्दिक बना रखी हैं, उनके कारण आपका व्यक्तित्व कुंठित और अविकसित रह जाता है।

यदि हम पूछें हमारे साहित्यकी शक्ति आज क्या है, क्या उसकी दुर्बलताएं हैं; किस प्रकार वह हमारे समाजको गति और दिशा दे सकता है, किस प्रकार वह स्वयं नया बल और शक्ति धारण कर सकता है, तो नगेन्द्रजीकी पुस्तकमें इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिलता। नगेन्द्रजीको इन प्रश्नों में कोई दिलचस्पी भी नहीं। वह मूलतः समाज और साहित्यकी गतिमें कोई अन्तरंग सम्बन्ध ही नहीं मानते। वह समझते हैं कि समाज चाहे रसातलको चला जाय श्रेष्ठ साहित्यका निर्माण तो "असाधारण प्रतिभाके असाधारण क्षणोंकी सृष्टि" है; अतएव नगेन्द्रजी अपने काल्पनिक सौन्दर्यकी दुनियामें मग्न हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्यकी यह झांकी सुन्दर अवश्य है, किन्तु आधुनिक हिन्दी साहित्यके अपने बुनियादी सवालोंका कोई उत्तर इस पुस्तकमें हमें नहीं मिलता। आशा है नगेन्द्रजी अपनी अगली रचनाओंमें इधर ध्यान देंगे।

ऐसा व्यंग्य और इतना निर्मोही

रमेश सिनहा

बहुत दिनों बाद एक अच्छी किताब पढ़नेको मिली। "जो न भूल सका"[1] के कई निबन्ध स्वयं लेखकके मुँहसे सुननेका अवसर पा चुका था। उन्हें "भूल भी न सका था। फिर भी चखनेमें चाशनीका नया रस मिला।

भदन्तजी बौद्ध दार्शनिक हैं। ऐसे बौद्ध, जिन्होंने जीवन-संग्रामसे बिल्कुल ही मुँह नहीं मोड़ लिया। और ऐसे दार्शनिक जिन्हें चिन्तनने जन-जीवनके परिहाससे बिल्कुल ही परे नहीं कर दिया।

वह जीवनका निरीक्षण करते चलते हैं, जैसे छिपकर, अपनेको निर्लिप्त रखते हुए। जीवनके तनेको पकड़कर हिलने का--उसकी आंतोंमें हाथ डालकर नश्तर लगाने का—प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। लेकिन ऐसा नहीं है कि ऐसे सत्प्रयत्नोंसे वह अपरिचित हों अथवा उन प्रयत्नोंके प्रति उनका **दृष्टिकोण अस्पष्ट हो**। प्रतिक्रियाकी, पूंजीवादकी, ढोंग-ढकोसलोंकी और सामाजिक और व्यक्तिगत पाखंडकी शक्तियोंपर इन सुन्दर संस्मरणोंमें उन्होंने कस-कस कर चोटें की हैं। देखिये "समाज" (पृष्ठ ८९), "यह विज्ञापन" (पृष्ठ २५), "वेतन—किसका, कितना" (५४), "शोषणका सबसे बड़ा साधन—धार्मिकता" (पृष्ठ १४१), "सर्व धर्म-सम्मेलन" (६२) अथवा "जनताका साहित्य--जातक कथायें" (पृष्ठ १९४ और २०३) या "प्रार्थना" (पृष्ठ २१२), जिसमें महात्माजीको सम्बोधन करते हुए वह पूछते हैं:

"बापू!" क्या आप इतना नहीं कर सकते हैं कि प्रार्थनामें आनेवाले लोगोंको यह बतायें कि सारी आयु परिश्रम करते रहनेपर भी वे वैसे ही भूखे-नंगे रहेंगे जब

---

१ **जो न भूल सका:** लेखक--भदन्त आनन्द कौसल्यायन; प्रकाशक: हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, शाहगंज, इलाहाबाद; मूल्य ३ रुपया।

तक समाजमें कुछ लोगोंको बिरला, डालमिया और सिंहानिया बननेकी छुट्टी है। बापू! आपको मिलनेवाले हज़ारों और लाखों रुपयोंके दानोंके कारण लोग उन्हें 'दानवीर' समझते हैं। बापू! इतना तो आप समझ ही सकते हैं कि यह बिरला, डालमिया और सिंहानिया 'दानवीर' पीछे हैं और 'लूटवीर' पहले।" (पृष्ठ २१३)

जब उन्हें आदरणीय बुर्जुगोंसे कहना होता है कि राजनीतिक समस्याएँ, आज़ादी के सवाल, प्रार्थनासे नहीं हल होते तो वह बहुत विनम्र होकर कहते हैं: "वायसराय या बादशाहके पास भेजे गये प्रार्थनापत्रकी पहुँच तो मिलती है, भगवानके दरबारमें की गयी प्रार्थनाकी तो पहुँच भी नहीं।"

ऐसा व्यंग्य, मधुर और इतना निर्मोही, हमारी भाषामें कम लिखा जाता है। इस पुस्तकमें वह चारों तरफ़ बिखरा पड़ा है।

एक उदाहरण और देनेका लोभ नहीं संवरण होता। सामाजिक शोषण, असमानता और जुल्मसे उत्पन्न होनेवाले मतभेदों और संघर्षोंपर पर्दा डालकर ऊपरी उपचारकी व्यवस्थाके निमित्त सर्व-धर्म सम्मेलनोंका संगठन किया जाता है। आनन्दजी इसके बारेमें लिखते हैं:

"कौन नहीं चाहेगा कि सभी धर्मोंके अनुयाइयोंमें भ्रातृभावकी स्थापना हो? लेकिन उसके लिये जो उपाय सोचा गया है, ग्रहण किया गया है, वह मेरी समझमें हमें अपने उद्देश्यकी ओर ले जानेवाला नहीं। सभी शहरोंके घासकी मंडियोंमें घसियारे एक जगह बैठकर घास बेचते हैं, ग्राहक वहाँ पहुँच जाते हैं। तो क्या इतनेसे सभी घसियारों और ग्राहकोंमें परस्पर भ्रातृप्रेम स्थापित हो जाता है?" (पृष्ठ ६७)

विचारक और विद्वान होनेके अतिरिक्त भदन्त आनन्दजी हिन्दीके एक उच्च कोटिके शैलीकार हैं। कमसे कम शब्दोंमें अधिकसे अधिक बातको ज़्यादासे ज़्यादा प्रभावशाली ढंगसे कहनेकी कला हमें उनसे सीखनी चाहिये।

सम्पादकों, प्रकाशकों और मित्रोंसे मैं अनुरोध करूंगा कि वे सब मिलकर आनन्दजीको वे तंग करें कि वह और लिखें, और तेज़ीसे और और ज़्यादा।

ग्यारह फ़ासिस्ट-विरोधी कहानियाँ

राजीव सक्सेना

खूनके धब्बे,[1] श्रीमोहनसिंह सेंगरकी ग्यारह फ़ासिस्ट-विरोधी कहानियोंका संग्रह है। सभीका घटना-स्थल विदेशोंमें है। उनका विषय है फ़ासिस्ट बर्बरता तथा उसके विरुद्ध संघर्ष करनेवाली मानवता, स्वतन्त्रता, संस्कृति एवं शान्तिकी प्रेमी मानवता।

'जय' और 'शोधका परिणाम' फ़ासिस्टवादकी विभीषिकाका चित्र खींचती हैं। 'वागनर,' 'अच्छे दिन,' और 'अन्तका आरम्भ,' फ़ासिस्ट देशोंके स्वतन्त्रता-प्रेमी नागरिकोंके संघर्षकी कहानियाँ हैं। 'विद्रोह,' 'नया युग,' और 'पीकिंगका भिखारी' फ़ासिस्टों द्वारा कुचले हुए राष्ट्रोंकी अमर और अजेय जनताके संग्राम और नवोत्थानकी कथाएं हैं। 'वे दोनों' और 'कप्तानकी वसीयत' कहानियाँ क्रमशः ब्रिटेन और अमेरिकाकी फ़ासिस्ट-विरोधी जनताके प्रयत्नों और मनोभावोंकी झाँकी देती हैं। 'युग

---

१. **खूनके धब्बे;** लेखक—श्रीमोहनसिह सेंगर। प्रकाशक—प्रदीप कार्यालय। मूल्य १॥) गेट्-अप, सुन्दर।

सन्धि ' युद्ध-जनित परिस्थितियोंका रूपक है—तूफ़ान, विध्वंस, संहार, और उससे भाग निकलनेकी आकांक्षा......पता नहीं, कहानीमें वर्णित शतायु बट-वृक्षका क्या हुआ मानव-रक्तसे सिंचकर वह उस तूफ़ानमें भी खड़ा रहा अथवा लाल-पीली लपटोंमें भस्मीभूत हो गया? जहाँ तक हमें मालूम है युद्धकी लपटें बर्बरताका पक्ष्य लेकर शान्त हो गई हैं; शतायु मानव जीवनका वट-वृक्ष आज भी लहलहा रहा है।

कहानियाँ, भाषा और शैलीकी दृष्टिसे सुन्दर हैं। 'वागनर' जैसी कहानियोंका कथानक अत्यन्त लोमहर्षक है, किन्तु फिर भी कहीं-कहीं जैसे एक जीवन-शून्यता सी अनुभव होती है। पात्र एक यांत्रिक शक्तिसे परिचालित प्रतीत होते हैं—जीवनी शक्तिसे बौद्धिक नहीं। कारण सम्भवतः यही है कि अपने पात्रोंसे लेखकका परिचय आत्मीय नहीं, है। कलकत्ते और बर्मासे आनेवाले शरणार्थियों, युद्धजन्य परिस्थिति और बममारीसे पीड़ित मज़दूर और मध्यवर्ग बस्तियों, मोटी मूँछोंके नीचे होते हुए चोरव्यापारी और मुनाफ़ाखोर आदिके चित्रणसे सेमरजी सहज ही हमारी आत्मीयता स्थापित कर सकते हैं। उससे आशा है, अपने आगामी कहानी-संग्रहमें, सेमर जी युद्ध-कालीन भारतकी कहानियाँ भी प्रकाशित करेंगे।

इस संग्रहकी कहानियोंके लिखनेमें, लेखकका उद्देश्य है शोषण, परापहरण, उत्पीड़न आदि फ़ासिस्ट प्रवृत्तियोंके विरुद्ध लोकमतको जाग्रत करना और लोकबल संगठित करना। इस दिशामें ये कहानियाँ सफल होंगी, इसमें सन्देह नहीं।

'अग्निपथ' और 'क्रान्तिदूत'

गिरिजाकुमार सिनहा

"**क्रान्तिदूत**" का कथा-काल मार्च-अप्रैल, १९४२से जनवरी-फ़रवरी, १९४३, अर्थात् देशके घोर राजनीतिक संकटका काल है। **अग्निपथ** की कथा-भूमि **१**९४०-१ के साम्राज्यवादी दमन और कांग्रेसके व्यक्तिगत सत्याग्रहसे अगस्त सन् १९४२ तक फैली है। अत्यधिक महत्वपूर्ण काल है। तथापि, कथा-वस्तुको, जान पड़ता है, जबरदस्ती तूल देकर बढ़ाया गया है। क्योंकि उपन्यासका केन्द्रीय विषय सन् ४२ में मज़दूरोंकी साम्राज्यविरोधी हलचल तक ही सीमित है। 'क्रान्तिदूत' लेखककी अधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। भारतपर जापानी ख़तरेका आरम्भ, क्रिप्स मिशनकी असफलताके बादका सार्वजनिक क्षोभ, कांग्रेसद्वारा विद्रोहकी धमकी, फिर राष्ट्रीय नेताओंकी गिरफ़्तारीके बाद जनताका दमन, जब कि जेलें हर विचारके लोगोंसे भर गयीं—यही कथानककी पृष्ठभूमि है। वह ऐतिहासिक घटनाओंका युग था। रिपोर्टाजके ढंगपर उसका क्रमिक चित्रण निस्संदेह मूल्यवान होता, और एकदम अधिक सच्चा और प्रभावकारी भी।

'क्रान्तिदूत' एक गम्भीर राजनीतिक विवादकी व्याख्याका प्रयत्न मात्र है, जो विश्व युद्धमें जापानके आनेके बाद हमारे देशमें आरम्भ हुआ और अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। फिर भी इसमें हम उस राजनीतिक विद्वेषको मिटानेकी ज़ोरदार अपील महसूस करते हैं, जो आज दुर्भाग्यवश देशके जन-जीवनमें विष घोल रहा है। और यही उपन्यासका सफल पक्ष है।

मगर इसे आद्योपान्त पढ़ जानेके बाद पाठक इसमें कुछ कमी सी महसूस करता है। कारण शायद यह है कि उपन्यासकारका सारा उद्योग एक राजनीतिक विवादको ही हल करनेमें व्यय हो गया है।

'क्रान्तिदूत'में तीन जोड़े प्रेमियोंकी कहानो है। आपत्ति यह नहीं है कि राजनीतिक उपन्यासोंके जोड़े प्रेम न करें। मगर प्रेमका वर्णन स्वाभाविक होना चाहिये। दूसरे यह कि प्लाटमें प्रेम-कहानीका समावेश अहेतुक न हो। मसलन इस उपन्यासमें मदन और छबिया और कप्तान और नूरजहाकी प्रेम-कथाकी सार्थकताका पता नहीं चलता।

श्रीकृष्णदासके स्त्री पात्रोंकी विषेशता यह है कि वह किसी न किसीके लिये ही जीना चाहती हैं और प्रेम प्रकट करनेमें पहल उनका ही रहता है। इसमें हमें कालेजोंके बहुधा अपरिपक्व-चरित्र युवकोंके मन-चीते सपनोंकी सी झलक मिलती है।

कवरका चित्र उपन्यासके अन्तका प्रतीक है: युवक और युवती हाथमें हाथ दिये क्रान्तिपथपर अग्रसर हो रहे हैं।

कहानीकी दृष्टिसे "अग्नि-पथ" तो और भी कच्चा है। उसके मुख्य पात्र साहबोंके लड़के हैं। सबोंके साहबी ठाठ हैं। कुलियोंकी हड़ताल लेकर कहानी चलती है। कथानक पाठकको कुलियोंकी बस्तीमें भी ले जाता है। मगर भूमिकामें वहा भी वही सम्पन्न मध्यवर्गी लोग मौजूद है। उन्हींके हाथमें नायकत्व है, वहाँ भी। जेलका भी दृष्य है, और जेल-जीवनकी अनेक अनावश्यक तफ़सीलोंका वर्णन। इसका अन्त भी हम वही देखते है; सिनेमाई सा: प्रेम और लुई अग्निपथ 'अग्रसर' हो जाते है।

श्रीकृष्णने अपने उपन्यासोंके ज़रिये एक नये वर्गके सामाजिक प्राणीका हमें परिचय दिया है। वह आदमी एक ऐसी पार्टीका सदस्य है, जिसकी शाखाए विश्वके कोने-कोनेमें हैं और जो भयंकर विरोध और अत्याचारका मुकाबला करते हुए मानव-कल्याणके लिये अनवरत युद्ध कर रहा है। उसका जीवन वैसा रोमांचकारी नहीं जैसा श्रीकृष्णदासने उसे चित्रित किया है। उसके जीवनके कठोर और त्यागमय पहलूका चित्रण हमें इन उपन्यासोमें नहीं के बराबर मिलता है। टेकनीककी दृष्टिसे भी उसमें ऐसी खामियाँ आ गयी हैं जो अक्षम्य हैं। पात्रोंके जीवनका आर्थिक और सामाजिक पहलू स्पष्ट नहीं होता। मसलन्, सन्तोष मात्र राजनीतिक आन्दोलनकारी है; कहाँ रहता है, उसके सामाजिक सम्बन्ध क्या हैं, खर्च कैसे चलता है, आदि बातोंको बतलाना उपन्यासकार बिलकुल भूल गया।

व्यर्थकी आख्यायकाओं, अनावश्यक रूपसे लम्बे वार्तालापोंमें मुख्य कहानी खो-सी जाती है।

ताहम ये दोनों उपन्यास लेखकके एक नवीन और सही दिशामें प्रयास है। जिस माध्यमको उन्होंने अपने लिये चुना है उसपर वह यद्यपि अभी अधिकार नहीं पा सके हैं, मगर इन उपन्यासोंको देखनेके बाद इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि उसको सफलतापूर्वक अपना सकनेकी उनमें प्रतिभा और शक्ति है।

'हिमालय' और 'निर्माण'

शमशेर बहादुर सिंह

'**हिमालय**'[1] पुस्तक रूपमें एक विशिष्ट साहित्यिक प्रकाशन है, जो चौथे अंकसे द्वैमासिकसे मासिक हो जायगा। यह अध्ययन, मनन और मनोरंजनकी आदर योग्य सामग्री प्रस्तुत कर रहा है। इसके उद्देश्योंको स्पष्ट करते हुए श्रीबेनीपुरीजी अपने सम्पादकीयमें लिखते हैं : "...सारी पुरानी धारणाएँ और परम्पराएँ भ्रष्ट-नष्ट हो रही हैं, उनके भग्नावशेषसे एक नयी संस्कृति आज धरातलपर सिर उठाकर झाँक रही है। 'हिमालय' का प्रकाशन आज उसी नव-जात संस्कृति-शिशुके आगमन का सूचक है।...' हिमालय ' भी हिन्दी साहित्यमें स्थायित्व और उच्चता, जीवन और यौवन, प्रवाह और प्रगतिका प्रतिनिधित्व करे, हमारी यही आकांक्षा है।... हम 'हिमालय' को मुख्यतः कलात्मक कृतियों और आलोचनाओंका मुखपत्र बनाना चाहते हैं।..."

बरबस 'जागरण' पाक्षिककी याद आ जाती है, जिसको बाबू शिवपूजन सहायजी मुन्शी प्रेमचन्दजीके साथ मिलकर निकालते थे। अपने अधिकारों और स्वत्वोंके प्रति तबसे कहीं अधिक जागी हुई आजकी जनताके युगमें हम 'हिमालय'का सहर्ष सादर स्वागत करते हैं।

इसकी गम्भीर सामग्रीमें हमारे पाठकोंको विशेष रूपसे देशकी सनातन वृत्तियों, युग-सम्मत स्वस्थ धारणाओं और राष्ट्रीय कला भावनाओंका दिग्दर्शन मिलेगा। कभी तुलनात्मक, कभी निरपेक्ष। जैसे श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री या दिनकरकी समालोचनाओंमें, निरपेक्ष। या, श्री बी. पी. सिनहाके 'नवीन साहित्यका सैद्धान्तिक आधार'में तुलनात्मक; जिसमें तर्क, सन्देह और भावुकताका मनोरंजक मिश्रण है; या, आचार्य नरेन्द्रदेवजीके दुरूह लेख 'व्यक्ति और समष्टि'में; जिसका निष्कर्ष, गूढ़ सत्य हो; निश्चय ही, स्पष्ट नहीं।

'हिमालय' की कहानियाँ और स्केच कला-दृष्टिसे ऊँचे हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसादजीका धारावाही 'संस्मरण' एक अलग चीज़ है, जिसका महत्व स्पष्ट है। संस्मरणात्मक स्केचोंमें शिवपूजन सहायजीका "पंडित किशोरी लाल गोस्वामी" सर्वोपरि है। जन-गणके सामूहिक संघठित संघर्षोंकी भी वैसी ही मार्मिक कहानियां जैसी श्रीबेनीपुरीजीने अपनी आकर्षक शैलीमें 'देव' अथवा 'बलदेव सिंह'के स्केचोंमें दी हैं, यदि हों, तो कहानीका आधुनिक सार्वभौमिक महत्व 'हिमालय'के पन्नोंमें और बढ़ जाय।

---

१. सम्पादक : श्रीशिवपूजन सहाय व श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, वार्षिक १०), प्रति अंक १)। प्रकाशक : पुस्तक भण्डार, पटना।

कवितामें कीट्स और रवीन्द्रनाथकी मशहूर कविताओंके अनुवाद असफल हुए हैं, ' हिमालय ' के योग्य नहीं हैं। इक़बालका ' साक़ी नामा ' भी भावार्थ की अपेक्षा रखता था। मौलिक रचनाओंमें श्री लक्ष्मीनारायण मिश्रके महाकाव्य ' सेनापति कर्ण ' का प्रकाशित अंश ' हिमालय ' के तीनों अंकोंकी सर्वश्रेष्ठ रचना और आधुनिक हिन्दी काव्यको एक महत्वपूर्ण देन है। ' दिनकर ' की ' कविका मित्र ' और ' नयी दुनिया ' उनकी ख्यातिके योग्य ही हैं।

' सम्पादकीय ' भागमें, विशेषकर साहित्यिक विषयोंपर शिवपूजनजीके नोट बहुत ध्यानसे पढ़नेकी चीजें हैं; तर्क की दृष्टिसे नहीं, एक विशिष्ट दृष्टिकोण को समझनेकी दृष्टिसे। श्री जानकीवल्लभ तथा दिनकरजीके लेख तथा आलोचनाएँ भी उसी प्रकार उपयोगी हैं। कलामें रस और भावका महत्व वे बहुत सुन्दरतासे स्पष्ट करते हैं। अन्तमें दिया हुआ विशद साहित्यिक सिंहावलोकन कामकी चीज है।

' प्रगतिशील साहित्य ' के साथ ' अश्लीलता ' का और ' अश्लीलता ' के साथ फ्रायड का नाम हिन्दीमें बड़ी उतावलीसे कुछ लोग जोड़ देते हैं। और पूँजीवादी-साम्राज्यवादी देशोंमें आज फ्रायडियन विद्वान ही अधिकतर मार्क्सवादी समालोचकोंके विरोधी हैं! वास्तवमें हमें अपनी साहित्य और कला-सम्बन्धी समस्याओंको बहुत धैर्य और निष्पक्ष मनोयोगसे मिलकर सुलझाना होगा। इस दिशामें हमें विश्वास है कि 'हिमालय ' हमारा पथ प्रदर्शन करेगा।

निर्माण[२] हिन्दीकी नयी, साहित्यिक ' द्वैमासिक पुस्तक ' है। सम्पादक प्रतिभाशाली नवयुवक कवि और कहानीकार रांगेय राघव हैं। अपनी भूमिकामें उन्होंने लेखकोंके पारिश्रमिक और " सर्वाधिकार " की रक्षाके साथ ही (इसी अंकमें श्रीदेवीदयालजी चतुर्वेदीका लेखकोंके संगठनकी आवश्यकतापर एक उपयोगी लेख भी है) उनका दायित्व भी रेखांकित किया है : " हम साहित्यको हल चलानेके बराबर समझते हैं, तलवार उठानेके बराबर समझते हैं, केवल शब्दावली नहीं। " बहुत सही दृष्टिकोण है। और कलाकारोंकी भावनामें यह भी स्पष्ट होना होगा कि वह तलवार किस प्रकार, किनके पक्षमें, किनके विरुद्ध उठायी जाय। उन्हें हल चलानेवालोंकी हस्त-रेखाएँ पढ़ना भी थोड़ा बहुत तो जानना ही होगा।

इस पहले अंकमें तीन-चार चीजें पठनीय हैं। श्रीप्रकाशचन्द्र गुप्तने 'साहित्यकी नयी दिशा'में दो प्रेरणाएँ दिखायी हैं : एक—फ्रायडियन, अन्तर्मुखी व्यक्तिवादी; दो—बहिर्मुखी, समाजवादी। इस दूसरी प्रवृत्तिको और अधिक स्पष्ट करनेकी आवश्यकता महसूस होती है। श्रीअमृतरायकी कहानी ' झंखड़ बिरवा'में है एक मध्यवर्गी गृहस्थीपर बूर्जवायी बिडम्बनाके दर्दनाक आक्रमणका चित्र।

मूल्य एक रुपया अधिक है। गेट-अप सन्तोषजनक नहीं। पर हमें आशा है समर्थ हिन्दी प्रेमी और नये लेखकोंका सहयोग 'निर्माण'को सफल बनायेगा।

---

२. पता : बाग मुजफ़्फ़रखाँ, आगरा।

प्राप्त-स्वीकार

इन पुस्तकोंकी समालोचना आगामी भागोंमें निकलेगी।

१. **रात-रानी** [कहानी-संग्रह] ले०— शम्भूनाथ सिंह; प्रकाशक : प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद।

२. **लाश पर** [कहानी-संग्रह] ले०— भगवत शरण उपाध्याय; प्रकाशक : प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद।

३. **मुक्तिकी मशाल** [कविता-संग्रह] ले०— तेज नारायण काक, प्रकाशक : यूनिवर्सल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।

४. **धरती** [कविता-संग्रह] ले०— त्रिलोचन शास्त्री, प्रकाशक : प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद।

नोट

१. पृष्ठ अट्ठानवेपर छपे चित्रका ब्लाक हमें 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के सौजन्यसे प्राप्त हुआ है। इसके लिये हम उक्त संस्थाके आभारी हैं।

२. 'गायका घी' शीर्षक कहानीका अनुवाद मूल बँगलासे श्रीअमृतरायने किया है।

३. इस चौथे भागकी पूर्व सूचित योजनामें कुछ आवश्यक परिवर्तनके कारण जो सामग्री इस भागमें नहीं दी जा सकी है, वह हम आगामी भागोंमें दे रहे हैं।

—सम्पादक।

भूल-सुधार

पृष्ठ		पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	[नीचेसे]	८–७	मूल...पीड़ाको	मूल्य...पीड़ाका
६	[,,]	१	ही	भी
७		५	मूल	[काट दीजिये]
७		८	भाव	काव्य
११		१०	वैभव	भँवर
१४		६	निर्माण	निर्णय
१४	[नीचेसे]	५–७	विषय	विषम
१६		३	धर्मक्षेत्र	अनुभव
१७		१६	मार्ग	कार्य
१८		१३	दर्शक	दर्शन
६३		१८	पार्टीका	[काट दीजिये]
७५		७	'जी !	[अगली पंक्तिका हिस्सा है]
७५	[पंक्ति ८ और ९ के बीचमें : जोड़ लीजिये 'क्यों मगर ?']			
७६	[नीचेसे पंक्तियाँ ७,८ दोनों मिला लीजिये।]			
९५	['सांस्कृतिक नव-जागरण' पृष्ठ ८५ पर चाहिये।]			

मुद्रक—शरफ़ अतहर अली, न्यू एज प्रिन्टिंग प्रेस, १९० बी. खेतवाड़ी मेन रोड, बम्बई ४
प्रकाशक—शरफ़ अतहर अली, जन-प्रकाशन गृह, १९० बी. खेतवाड़ी मेन रोड, बम्बई ४

उदय शंकर प्रोडक्शन

कल्पना

पहला नृत्य-प्रधान चित्र

स्टूडियो : **जेमिनी**, मद्रास

स्टेज एण्ड स्क्रीन प्रेज़ेन्टेशन्स